अगस्त, 2018
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक	: श्री पुण्डरीक शर्मा
उप-संपादक	: सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह
परामर्शदाता	: सर्वश्री दयाल चन्द्र ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

© 2018 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

---

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2018 अंक - 8

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
अविनाश शुक्ला

(2018) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

उच्चतम न्यायालय द्वारा हाल में एक के बाद एक जो अनेक फैसले दिए गए उनमें से अधिकतर क्रांतिकारी माने जा रहे हैं । वे लिंग समानता पर आधारित समाज को प्रभावित करने वाले निर्णय हैं । इनमें से सबसे प्रमुख निर्णय है सबरीमाला मंदिर में सभी उम्र की महिलाओं को प्रवेश की अनुमति देने वाला फैसला । यह दूरगामी महत्व वाला फैसला है । यह फैसला न केवल स्त्री और पुरुष के मध्य भेदभाव पर विराम लगाता है बल्कि इस दकियानूसी सोच को भी खारिज करता है कि मासिक धर्म के दौरान महिलाएं मंदिर जाने के योग्य नहीं होती । माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आज के युग में इस सोच के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता और मंदिर में तो बिल्कुल भी नहीं क्योंकि ईश्वर स्त्री और पुरुष में भेद कैसे कर सकता है, उसके लिए तो सभी बराबर हैं । जो लोग इस फैसले से असहमत हैं उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि हिन्दू धर्म में स्त्री को देवी माना जाता है और ईश्वर के घर यानि मंदिर में ही उसका अनादर मान्य नहीं ठहराया जा सकता ।

उच्चतम न्यायालय का एक अन्य महत्वपूर्ण फैसला समलैंगिक संबंधों को अपराध मानने वाली धारा 377 को खारिज करने का रहा । इस फैसले को देते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह कानून ब्रिटेन समेत अनेक देशों में खारिज किया जा चुका है और यदि दो समलैंगिक बालिग आपसी सहमति के साथ किसी एकांत स्थान पर लैंगिक संबंध स्थापित करते हैं तो उनके विरुद्ध दंड संहिता की धारा 377 के अधीन दांडिक कार्यवाही नहीं चलायी जा सकती । यद्यपि हमारे समाज का एक बड़ा वर्ग समलैंगिक संबंधों को मानसिक विकृति मानता है लेकिन यह भी एक सच्चाई है कि वर्तमान में इस धारणा को समर्थन प्राप्त हो रहा है कि समलैंगिकता व्यक्ति विशेष की यौन अभिरुचि का मामला है । साथ ही इस यौन अभिरुचि को दांडिक प्रावधानों से मुक्त कराए जाने हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा भी तैयार की जा चुकी है जिसका भारत एक हस्ताक्षरकर्ता है ।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने लैंगिक असमानता पर आधारित एक अन्य उपबंध दंड संहिता की धारा 497 को भी समाप्त कर दिया । यद्यपि माननीय उच्चतम न्यायालय ने विवाहेत्तर संबंधों को सामाजिक बुराई के रूप में देखा और उसे तलाक का आधार भी माना, परन्तु उसे दांडिक विधि

के अनुसार अपराध मानने से इनकार कर दिया । उच्चतम न्यायालय का स्पष्ट आशय यह है कि यह धारा स्त्री और पुरुष के मध्य लिंग के आधार पर भेदभाव करती है जिसकी इजाजत हमारा संविधान नहीं देता ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको पत्रिका की गुणवत्ता को सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत करवाते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2018

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अक्षय झुनझुनवाला **बनाम** भारत संघ	169
अनिल अग्रवाल **बनाम** विकास अग्रवाल	271
अमर चंद शर्मा और एक अन्य **बनाम** पीठासीन अधिकारी-सहयुक्त-जिला मजिस्ट्रेट-सहयुक्त-चैयरमैन और अन्य	216
अवधेश कुमार सिंह और एक अन्य **बनाम** श्याम नारायण झा और एक अन्य	223
ओरियंटल एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती बब्बो और अन्य	163
एस. पिचई **बनाम** पोन्नाम्मल और अन्य	232
गजेन्द्रन और अन्य **बनाम** थंगावेल	240
पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इंडिया लि. **बनाम** ज्योति स्ट्रेक्चर्स	208
महेन्द्र सिंह जोरुभा ज़ाला और एक अन्य **बनाम** कांताबेन श्रीकृष्ण अग्रवाल (मृतक) और एक अन्य	196
मोहन लाल **बनाम** रमेश चन्द	277
रणछोड़ और अन्य **बनाम** राम चन्द्र और एक अन्य	248
रबिन्दरजीत सिंह एण्ड सन्स इंजीनियर एण्ड बिल्डर्स (मैसर्स) **बनाम** अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक (राष्ट्रीय परियोजना निर्माण निगम लि.)	258
रेणू सिंह **बनाम** प्रमोद कुमार सिंह	153
सुनीता और एक अन्य **बनाम** सत्य नारायण	147

संसद् के अधिनियम

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 10

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (2016 का 31)

– धारा 3, 5, 7, 8 और 9 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14 और 15] – निगमित देनदार को ऋण देने वाले वित्तीय लेनदारों और उसके साथ व्यापार करने वाले लेनदारों के मध्य विभेद – युक्तिसंगत और बोधगम्य आधार का अभाव – लेनदारों की समिति के सदस्य वे लेनदार होने चाहिएं जिनमें जीवन क्षमता का अनुगमन करने और शर्तों को उपांतरित करने की क्षमता हो – व्यापार करने वाले लेनदार न तो दिवाला अस्तित्व के संबंध में मामले का निर्णय करने में समर्थ होते हैं और न ही उसके भविष्य की उत्तम संभावनाओं के लिए अपने संदायों को टालने का जोखिम लेने के इच्छुक होते हैं – दिवाला प्रक्रिया के तीव्र गति वाली और प्रभावी होने के लिए यह आवश्यक है कि लेनदारों की समिति में केवल वित्तीय लेनदार हों ।

अक्षय झुनझुनवाला बनाम **भारत संघ** 169

– धारा 7, 8 और 9 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14 और 15] – निगमित देनदार को ऋण देने वाले वित्तीय लेनदारों और उसके साथ व्यापार करने वाले लेनदारों के मध्य विभेद – युक्तिसंगत और बोधगम्य आधार का अभाव – वित्तीय लेनदार को व्यापार करने वाले लेनदार के मुकाबले अनुचित रूप से अधिमान प्रदान किया जाना – वित्तीय लेनदार का दावा परिसमापन से उत्पन्न होता है जबकि व्यापार करने वाले लेनदार का दावा कारबार के सामान्य अनुक्रम में उत्पन्न होता है – लेनदारों के मध्य वर्गीकरण तभी अनुज्ञेय होगा यदि वह युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित हो – निगमित देनदार के लेनदारों के

पृष्ठ संख्या

संबंध में 2016 की संहिता द्वारा रेखांकित वैशिष्ट्य संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण नहीं करते – न्यायालयों को विधानों, विशेष रूप से आर्थिक अधिक्षेत्र के विधानों पर विचार करते हुए कानून की संवैधानिकता के पक्ष में उपधारणा करनी चाहिए – किसी कम्पनी की दिवाला प्रक्रिया में वित्तीय लेनदार के साथ विशिष्ट व्यवहार के बाबत यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण किया गया है ।

अक्षय झुनझुनवाला बनाम **भारत संघ** 169

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 (2007 का 56)

– धारा 4, 5 और 23 [सपठित हरियाणा माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण नियम, 2009 का नियम 24] – वारिसों द्वारा भरणपोषण की जिम्मेदारी न निभाना – माता-पिता द्वारा मकान से अपनी वधू की बेदखली के लिए अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किया जाना – ग्राह्यता – बेदखली के लिए आवेदन केवल जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है न कि अधिकरण द्वारा – अतः भरणपोषण अधिकरण द्वारा पारित बेदखली का आदेश अधिकारिता रहित होने के कारण अपास्त किए जाने योग्य है ।

अमर चंद शर्मा और एक अन्य बनाम **पीठासीन अधिकारी-सहयुक्त-जिला मजिस्ट्रेट-सहयुक्त-चैयरमैन और अन्य** 216

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26)

– धारा 7 और 11 – माध्यस्थम् करार – मध्यस्थ की नियुक्ति – जहां कार्य आदेश में सम्मिलित शर्तों वाले दस्तावेज पर दोनों पक्षकारों के हस्ताक्षर हैं, वहां यह माध्यस्थम्

पृष्ठ संख्या

करार गठित करता है और दोनों पक्षकार इसकी शर्तों का पालन करने के लिए बाध्य हैं, अतः, कार्य आदेश के अनुसरण में मध्यस्थ की नियुक्ति की जानी अपेक्षित है ।

रबिन्दरजीत सिंह एण्ड सन्स इंजीनियर एण्ड बिल्डर्स (मैसर्स) बनाम **अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक (राष्ट्रीय परियोजना निर्माण निगम लि.)** 258

– धारा 34 [दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 की धारा 7 और 14(1)(क)] – मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन के अन्तर्गत लम्बित सुनवाई को संहिता के उपबंधों के अन्तर्गत स्थगित किया जाना – माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाही दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14(1)(क) के अवरोध द्वारा बाधित नहीं है और इस धारा में प्रयुक्त शब्द "कार्यवाहियों" का आशय समस्त कार्यवाहियों से नहीं होता ।

पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इंडिया लि. बनाम **ज्योति स्ट्रेक्चर्स** 208

– धारा 34 [दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 की धारा 7 और 14(1)(ख)] – निगमित देनदार की आस्तियों के विरुद्ध ऋण वसूली कार्रवाई को प्रतिषिद्ध किया जाना – संहिता की धारा 14(1)(ख) के अधीन ऋण स्थगन निगमित देनदार की आस्तियों के विरुद्ध ऋण वसूली कार्यवाही को प्रतिषिद्ध किए जाने के लिए आशयित है और माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाही का जारी रहना, जो निगमित देनदार की आस्तियों को नुकसान पहुंचाने वाली, न्यून या विलुप्त करने वाली या विपरीत रूप से प्रभावित करने वाली नहीं है, संहिता की धारा 14(1)(क) के अधीन प्रतिषिद्ध नहीं है ।

पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इंडिया लि. बनाम **ज्योति स्ट्रेक्चर्स** 208

पृष्ठ संख्या

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 173 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 6] – दुर्घटना और प्रतिकर – दुर्घटना कारित करने वाले व्यक्ति द्वारा दुर्घटना से इनकार किया जाना – दुर्घटना की सूचना किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा अपठनीय हस्ताक्षर युक्त आवेदन के माध्यम से पुलिस थाना में प्राप्त कराया जाना – दुर्घटना में प्रयुक्त मोटर साइकिल का रजिस्ट्रीकरण संख्या और उसके चालक का नाम उल्लेख प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या दावा याचिका में न किया जाना और उसके विरुद्ध कोई अभियोजन संचालित न किया जाना – दुर्घटना के आठ वर्ष पश्चात् दावा याचिका फाइल किया जाना – मृतक की पत्नी द्वारा अपने रिहायशी पते के बाबत असंगत कथन किया जाना – दुर्घटना के साक्ष्य में समाचारपत्र की तारीख रहित कटिंग फाइल किया जाना – बीमा कम्पनी किसी भी प्रतिकर के संदाय की दायी नहीं है, दावा याचिका खारिज किए जाने योग्य है ।

ओरियंटल एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती बब्बो और अन्य** 163

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 16 और 20(ग) – विक्रय-करार – विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – क्रेता द्वारा विक्रय-करार के अपने भाग के अनुपालन के लिए तैयारी और इच्छा साबित किया जाना – क्रेता विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए अनुतोष पाने का हक़दार है ।

अवधेश कुमार सिंह और एक अन्य बनाम **श्याम नारायण झा और एक अन्य** 223

– धारा 16(ग) और 20 – विक्रय-करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – विक्रेता द्वारा विक्रय-

पृष्ठ संख्या

करार में मूल हक विलेख और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए अनुबंध किया जाना – विक्रेताओं द्वारा नियत अवधि के भीतर उक्त दस्तावेज़ पेश न किया जाना – क्रेता द्वारा अपनी ओर से संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए तैयारी और इच्छा उपदर्शित करना – क्रेता विनिर्दिष्ट अनुपालन के अनुतोष को पाने का हकदार है ।

गजेन्द्रन और अन्य बनाम **थंगावेल** 240

– धारा 38 और 39 – स्थायी व्यादेश के लिए वाद – संयुक्त संपत्ति में सह-स्वामियों/सह-भागीदारों का एक रास्ता (ड्योढ़ी) होना – एक भागीदार द्वारा सन्निर्माण करके रास्ता अवरुद्ध किया जाना – सह-स्वामी/सह-भागीदार किसी रीति में सन्निर्माण करके अन्य स्वामियों/भागीदारों का रास्ता अवरुद्ध नहीं कर सकता – स्थायी व्यादेश मंजूर किया जाना उचित है ।

मोहन लाल बनाम **रमेश चन्द** 277

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)

– धारा 53क [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) की धारा 17(1क), 2001 के संशोधन अधिनियम सं. 48 द्वारा यथासंशोधित] – अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-करार – संशोधन से पूर्व रजिस्ट्रीकरण आवश्यक न होना – अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-करार संशोधन से पूर्व निष्पादित किया जाना – विक्रय-करार में विवादित भूमि का कब्जा क्रेता/अंतरिती को न दिया जाना – दस्तावेज को अधिनियम की धारा 17(1क) लागू नहीं होती ।

अवधेश कुमार सिंह और एक अन्य बनाम **श्याम नारायण झा और एक अन्य** 223

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 1, नियम 10 और धारा 47 – निर्णीत-ऋणी

पृष्ठ संख्या

के पति द्वारा मकान लाइसेंस पर लिया जाना – लाइसेंसी की मृत्यु के पश्चात् लाइसेंसी की विधवा द्वारा संपत्ति पर बलपूर्वक कब्जा – सक्षम न्यायालय द्वारा बेदखली आदेश – निष्पादन कार्यवाहियां – निष्पादन कार्यवाहियों में अवयस्क को आवश्यक पक्षकार न बनाए जाने और अनावश्यक पक्षकार बनाए जाने संबंधी आक्षेप – न्यायालय द्वारा आक्षेप खारिज किया जाना – व्यथित पक्षकार द्वारा खारिजी आदेश को किसी न्यायालय में चुनौती न देने के कारण आदेश अंतिम बन जाना – चूंकि विवादित संपत्ति में लाइसेंसी के रूप में काबिज व्यक्ति का कोई अंश नहीं था – अतः मात्र इस आधार पर कि लाइसेंसी के अवयस्क पुत्र को पक्षकार नहीं बनाया गया, निष्पादन कार्यवाहियों को अवैध नहीं माना जा सकता ।

सुनीता और एक अन्य बनाम **सत्य नारायण** 147

– आदेश 1, नियम 10, आदेश 22, नियम 3 और 10 [विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20] – विक्रय-करार के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – अपील के लंबन के दौरान एकमात्र वादी की मृत्यु – मृतक के विधिक वारिसों द्वारा पक्षकार बनने के लिए आवेदन न देना – अपील का स्वतः उपशमन – तृतीय पक्षकार द्वारा पक्षकार बनने के लिए आवेदन – ग्राह्यता – ऐसा कोई आवेदन केवल कार्यवाहियों के लंबन के दौरान ही ग्रहण किया जा सकता है न कि कार्यवाहियों के उपशमन के पश्चात् – अतः ऐसा आवेदन खारिज किए जाने योग्य है ।

महेन्द्र सिंह जोरुभा ज़ाला और एक अन्य बनाम **कांताबेन श्रीकृष्ण अग्रवाल (मृतक) और एक अन्य** 196

– आदेश 1, नियम 10 – संपत्ति के विभाजन के लिए वाद – प्रारंभिक डिक्री पारित किए जाने के पश्चात्

पृष्ठ संख्या

अंतिम डिक्री कार्यवाहियों के दौरान तृतीय पक्षकार द्वारा पक्षकार बनने के लिए आवेदन – ग्राह्यता – न्यायालय को अंतिम डिक्री कार्यवाही के दौरान तृतीय पक्षकार द्वारा आवेदन करने पर प्रारंभिक डिक्री को संशोधित करने की अधिकारिता है – अतः अंतिम डिक्री कार्यवाहियों में तृतीय पक्षकार द्वारा आवेदन करने पर उसे पक्षकार बनाए जाने में कोई वर्जन नहीं है ।

एस. पिचई बनाम **पोन्नाम्मल और अन्य** 232

– आदेश 38, नियम 5 – उधार दी गई धनराशि को वसूल करने के लिए वाद – वादी द्वारा वाद के साथ प्रतिवादी के विरुद्ध संपत्ति अंतरित न किए जाने हेतु आवेदन – न्यायालय द्वारा प्रतिवादी को प्रतिभूति दाखिल करने के लिए निदेश – प्रतिवादी द्वारा वाद में समनों की तामील के तुरन्त पश्चात् संपत्ति का अन्तरण – विचारण न्यायालय द्वारा वादी के हक में प्रथमदृष्ट्या राय गठित करना – प्रतिवादी द्वारा अपील में चुनौती – विचारण न्यायालय द्वारा संपत्ति कुर्क किए जाने का आदेश उचित है ।

अनिल अग्रवाल बनाम **विकास अग्रवाल** 271

हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78)

– धारा 12, परंतुक (ख) – दत्तक – निहित हित – केवल वह संपत्ति जो दत्तक लिए जाने के पूर्व दत्तक बालक में निहित होती है, अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के अधीन उसमें सतत रूप से निहित रहती है – दत्तक के नैसर्गिक पिता की सहदायिकी संपत्तियां उसमें निहित नहीं हो सकतीं और ऐसी संपत्तियां अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के अधीन संरक्षित नहीं होती हैं ।

रणछोड़ और अन्य बनाम **राम चन्द्र और एक अन्य** 248

पृष्ठ संख्या

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13, 20 और 50 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 112] – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए याचिका फाइल किया जाना – पत्नी द्वारा भरण-पोषण का दावा – पति-पत्नी के वैवाहिक संबंध से पुत्र का जन्म होना – बच्चे का जन्म विवाह की तारीख से सात मास की अवधि में होना – पति द्वारा पुत्र का अवैध संबंधों द्वारा पैदा होने का आरोप लगाया जाना और पत्नी द्वारा आरोपों का खंडन किया जाना – पत्नी द्वारा भी याचिका फाइल किया जाना और दहेज का आरोप लगाया जाना – पति द्वारा डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने की प्रार्थना किया जाना – यदि किसी मामले में पत्नी या पति दोनों में से कोई भी इस प्रकार का आरोप लगाता है तो न्यायालय विधि के अधीन अपने विवेक का प्रयोग करते हुए और बच्चे के भविष्य को ध्यान में रखते हुए डी.एन.ए. परीक्षण का आदेश दे सकता है जिससे कि बच्चे के भविष्य पर इसका विपरीत प्रभाव न पड़े ।

रेणू सिंह बनाम **प्रमोद कुमार सिंह** 153

सुनीता और एक अन्य

बनाम

सत्य नारायण

तारीख 4 सितंबर, 2017

न्यायमूर्ति राज मोहन सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 1, नियम 10 और धारा 47 – निर्णीत-ऋणी के पति द्वारा मकान लाइसेंस पर लिया जाना – लाइसेंसी की मृत्यु के पश्चात् लाइसेंसी की विधवा द्वारा संपत्ति पर बलपूर्वक कब्जा – सक्षम न्यायालय द्वारा बेदखली आदेश – निष्पादन कार्यवाहियां – निष्पादन कार्यवाहियों में अवयस्क को आवश्यक पक्षकार न बनाए जाने और अनावश्यक पक्षकार बनाए जाने संबंधी आक्षेप – न्यायालय द्वारा आक्षेप खारिज किया जाना – व्यथित पक्षकार द्वारा खारिजी आदेश को किसी न्यायालय में चुनौती न देने के कारण आदेश अंतिम बन जाना – चूंकि विवादित संपत्ति में लाइसेंसी के रूप में काबिज व्यक्ति का कोई अंश नहीं था – अतः मात्र इस आधार पर कि लाइसेंसी के अवयस्क पुत्र को पक्षकार नहीं बनाया गया, निष्पादन कार्यवाहियों को अवैध नहीं माना जा सकता ।

आवेदकों ने इस पुनरीक्षण आवेदन में अपर जिला न्यायाधीश, जालंधर द्वारा तारीख 9 मई, 2017 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा वर्तमान आवेदकों द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की गई थी । अपील सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) द्वारा तारीख 20 मई, 2015 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई थी जिसके द्वारा आवेदकों द्वारा फाइल आक्षेपों को खारिज किया गया था । प्रत्यर्थी द्वारा प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 को यह निदेश करने के लिए व्यादेश हेतु एक वाद फाइल किया गया था कि मकान का खाली कब्जा प्रत्यर्थी को दिया जाए । वाद तारीख 25 सितंबर, 2014 के निर्णय और डिक्री द्वारा खर्चों सहित डिक्री किया गया था और प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 को विचारण न्यायालय द्वारा

निर्णय और डिक्री पारित करने की तारीख से 2 मास की अवधि के भीतर वाद संपत्ति का खाली कब्जा सुपुर्द करने का निदेश दिया गया था और विफल रहने पर वादी-प्रत्यर्थी को यह स्वतंत्रता दी गई थी कि वह निष्पादन के साधनों द्वारा कब्जा प्राप्त कर ले । प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 ने उपर्युक्त निर्णय और डिक्री को अपील में आक्षेपित किया जिसमें वह सफल नहीं हुआ और अपर जिला न्यायाधीश, जालंधर ने तारीख 25 फरवरी, 2016 के निर्णय और डिक्री द्वारा अपील खारिज कर दी । इसके पश्चात् डिक्रीधारक-प्रत्यर्थी ने प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 के विरुद्ध वाद संपत्ति का कब्जा, कब्जा अधिपत्रों द्वारा लेने के लिए निष्पादन आवेदन फाइल किया । पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वाद कार्यवाहियों के दौरान प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 द्वारा कार्यवाहियों में अवयस्क को पक्षकार बनाने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था तथापि, उक्त आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 10 सितंबर, 2014 को खारिज कर दिया गया था और प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 द्वारा उक्त आदेश को किसी भी न्यायालय के समक्ष कभी भी आक्षेपित नहीं किया गया और इसलिए यह पक्षकारों के बीच अंतिम बन गया । इसके पश्चात् तारीख 25 सितंबर, 2014 को वाद डिक्री किया गया था और निचले अपील न्यायालय ने तारीख 25 फरवरी, 2016 के आदेश द्वारा उक्त डिक्री को कायम रखा था । निचले अपील न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील के लंबन के दौरान निष्पादन आवेदन फाइल किया गया । प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 द्वारा यह एकमात्र आक्षेप किया गया था कि अवयस्क बालक को पक्षकार नहीं बनाया गया था और इसलिए निर्णय और डिक्री निष्पादन योग्य नहीं थी । निष्पादन न्यायालय ने निर्णय और डिक्री के निष्पादन के लिए पुलिस सहायता उपलब्ध कराने के लिए जिला और सेशन न्यायाधीश, जालंधर को एक पृथक् अनुरोध पत्र लिखा था । विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए उस मकान के जो वादी-प्रत्यर्थी ने वर्ष 1997 में क्रय किया था, बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 का उसमें कोई भाग है । विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन आवेदन पर विचार करते हुए अवयस्क बालक को पक्षकार न बनाने के संबंध में आक्षेप पर विनिर्दिष्ट रूप से विचार किया था और उसे तारीख 10 सितंबर, 2014 को खारिज कर दिया था । इस न्यायालय ने तारीख 4 अगस्त, 2017 के आदेश द्वारा, दोनों पक्षों

को उनकी नातेदारी को ध्यान में रखते हुए पक्षकारों के बीच विवाद को आपस में सुलझाने की संभावना के संबंध में आज न्यायालय में उपस्थित रहने के लिए निदेश किया था । पक्षकारों से बातचीत करने के पश्चात् न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच सुलह कराने की किंचित मात्र भी गुंजाइश नहीं है । इस स्थिति को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय को निचले न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती है । इस पुनरीक्षण आवेदन में कोई भी बल नहीं पाया जाता है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । (पैरा 8, 9, 12, 13 और 14)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2016]	ए. आई. आर. 2016 (एन. ओ. सी.) 455 (पी. एन. एच.) : **हमीना कांग** बनाम **जिला मजिस्ट्रेट (संघ राज्यक्षेत्र), चंडीगढ़ ;**	11
[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2675 : **विमलाबेन अजीतभाई पटेल** बनाम **वत्सलाबेन अशोकभाई पटेल ;**	11
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1118 = (2007) 3 एस. सी. सी. 169 : **एस. आर. बत्रा** बनाम **श्रीमती तरूणा बत्रा ।**	10

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2017 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 4562.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदकों की ओर से श्री वी. के. राणा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री मलकीत सिंह

न्यायमूर्ति राज मोहन सिंह – आवेदकों ने इस पुनरीक्षण आवेदन में अपर जिला न्यायाधीश, जालंधर द्वारा तारीख 9 मई, 2017 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा वर्तमान आवेदकों द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की गई थी । अपील सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ

खंड) द्वारा तारीख 20 मई, 2015 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई थी जिसके द्वारा आवेदकों द्वारा फाइल आक्षेपों को खारिज किया गया था ।

2. प्रत्यर्थी द्वारा प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 को यह निदेश करने के लिए व्यादेश हेतु एक वाद फाइल किया गया था कि मकान का खाली कब्जा प्रत्यर्थी को दिया जाए । वाद तारीख 25 सितंबर, 2014 के निर्णय और डिक्री द्वारा खर्चों सहित डिक्री किया गया था और प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 को विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय और डिक्री पारित करने की तारीख से 2 मास की अवधि के भीतर वाद संपत्ति का खाली कब्जा सुपुर्द करने का निदेश दिया गया था और विफल रहने पर वादी-प्रत्यर्थी को यह स्वतंत्रता दी गई थी कि वह निष्पादन के साधनों द्वारा कब्जा प्राप्त कर ले ।

3. प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 ने उपर्युक्त निर्णय और डिक्री को अपील में आक्षेपित किया जिसमें वह सफल नहीं हुई और अपर जिला न्यायाधीश, जालंधर तारीख 25 फरवरी, 2016 के निर्णय और डिक्री द्वारा अपील खारिज कर दी । इसके पश्चात् डिक्रीधारक-प्रत्यर्थी ने प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 के विरुद्ध वाद संपत्ति का कब्जा, कब्जा अधिपत्रों द्वारा लेने के लिए निष्पादन आवेदन फाइल किया ।

4. प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 ने अपनी ओर से और अपने अवयस्क पुत्र अर्थात् नितिन कुमार की ओर से निष्पादन कार्यवाहियों में आक्षेप फाइल किए थे । निष्पादन न्यायालय द्वारा उक्त आक्षेप तारीख 20 मई, 2015 के आदेश द्वारा खारिज कर दिए गए । निर्णीत-ऋणी द्वारा किया गया एकमात्र आक्षेप यह था कि अवयस्क बालक धर्मेन्द्र को वाद कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं बनाया गया था और इसलिए आवश्यक पक्षकार न बनाए जाने और अनावश्यक पक्षकार बनाए जाने के आधार पर निष्पादन आवेदन खारिज किए जाने योग्य है । निष्पादन न्यायालय द्वारा आक्षेप खारिज किए गए थे और अपर जिला न्यायाधीश, जालंधर द्वारा अपील में तारीख 9 मई, 2017 को पारित आदेश द्वारा उक्त आदेश की पुष्टि की गई थी ।

5. अभिलेख पर यह आया है कि वादी-प्रत्यर्थी ने प्रश्नगत भूखंड वर्ष 1997 में क्रय किया था और तत्पश्चात् इस भूखंड में तीन कक्ष, रसोई, भंडार, बरामदा और एक टॉयलेट सन्निर्मित किया था और इसके लिए उसने बैंक से ऋण लिया था ।

6. प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 का विवाह प्रत्यर्थी अर्थात् धर्मेन्द्र सिंह के

पुत्र के साथ हुआ था, जिसकी तारीख 9 अक्तूबर, 2009 को मृत्यु हो गई थी । उस समय प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 अपने पति के साथ गांव में पृथक् रह रही थी । वर्ष 2005 में आवेदक के पुत्र ने प्रत्यर्थी-पिता से अपने स्व-अर्जित मकान में एक कक्ष और रसोई देने का अनुरोध किया । प्रत्यर्थी ने उक्त कक्ष और रसोई अपने पुत्र को दे दी । विद्युत मीटर और अन्य दस्तावेज आरंभ से ही प्रत्यर्थी के नाम में रहे थे । प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 के पति को केवल लाइसेंसी के रूप में उक्त कक्ष और रसोई दी गई थी ।

7. तारीख 9 अक्तूबर, 2009 को धर्मेन्द्र सिंह की मृत्यु के पश्चात् प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 ने कक्ष के ताले तोड़ कर बलपूर्वक उसका कब्जा ले लिया । इस संबंध में पुलिस में शिकायत की गई थी और इसके पश्चात् प्रतिवादी-आवदेक सं. 1 को तारीख 10 अक्तूबर, 2010 को विधिक सूचना जारी की गई थी ।

8. वाद कार्यवाहियों के दौरान प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 द्वारा कार्यवाहियों में अवयस्क को पक्षकार बनाने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था तथापि, उक्त आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 10 सितंबर, 2014 को खारिज कर दिया गया था और प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 द्वारा उक्त आदेश को किसी भी न्यायालय के समक्ष कभी भी आक्षेपित नहीं किया गया और इसलिए यह पक्षकारों के बीच अंतिम बन गया । इसके पश्चात् तारीख 25 सितंबर, 2014 को वाद डिक्री किया गया था और निचले अपील न्यायालय ने तारीख 25 फरवरी, 2016 के आदेश द्वारा उक्त डिक्री को कायम रखा था ।

9. निचले अपील न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील के लंबन के दौरान निष्पादन आवेदन फाइल किया गया । प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 द्वारा यह एकमात्र आक्षेप किया गया था कि अवयस्क बालक को पक्षकार नहीं बनाया गया था और इसलिए निर्णय और डिक्री निष्पादन योग्य नहीं थी । निष्पादन न्यायालय ने निर्णय और डिक्री के निष्पादन के लिए पुलिस सहायता उपलब्ध कराने के लिए जिला और सेशन न्यायाधीश, जालंधर को एक पृथक् अनुरोध पत्र लिखा था ।

10. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **एस. आर. बत्रा** बनाम **श्रीमती तरूणा बत्रा**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि पत्नी किसी मकान में साथ रहने के आधार पर निवास के अधिकार का दावा नहीं कर

---

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1118 = (2007) 3 एस. सी. सी. 169.

सकती । किसी मकान में साथ रहने का एकमात्र अर्थ यह है कि मकान पति का है या पति द्वारा किराए पर लिया गया है या मकान संयुक्त कुटुंब की संपत्ति है, जिसका कि पति एक सदस्य है । यदि मकान पूर्ण रूप से सास-श्वसुर की संपत्ति है तो यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा मकान ऐसे अंशों वाला है जिसमें कि वधू निवास के किसी अधिकार के दावे की हकदार है ।

11. इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त मत व्यक्त करने में **हमीना कांग** बनाम **जिला मजिस्ट्रेट (संघ राज्यक्षेत्र), चंडीगढ़**[1] और **विमलाबेन अजीतभाई पटेल** बनाम **वत्सलाबेन अशोकभाई पटेल**[2] वाले मामलों का अनुसरण किया गया था ।

12. उपर्युक्त विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए उस मकान के जो वादी-प्रत्यर्थी ने वर्ष 1997 में क्रय किया था, बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतिवादी-आवेदक सं. 1 का उसमें कोई भाग है । विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन आवेदन पर विचार करते हुए अवयस्क बालक को पक्षकार न बनाने के संबंध में आक्षेप पर विनिर्दिष्ट रूप से विचार किया था और उसे तारीख 10 सितंबर, 2014 को खारिज कर दिया था ।

13. इस न्यायालय ने तारीख 4 अगस्त, 2017 के आदेश द्वारा, दोनों पक्षों को उनकी नातेदारी को ध्यान में रखते हुए पक्षकारों के बीच विवाद को आपस में सुलझाने की संभावना के संबंध में आज न्यायालय में उपस्थित रहने के लिए निदेश किया था । पक्षकारों से बातचीत करने के पश्चात् मुझे यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच सुलह कराने की किंचित मात्र भी गुंजाइश नहीं है ।

14. इस स्थिति को दृष्टिगत करते हुए मुझे निचले न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती है । इस पुनरीक्षण आवेदन में कोई भी बल नहीं पाया जाता है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है ।

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 2016 (एन. ओ. सी.) 455 (पी. एन. एच.).

[2] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2675.

रेणू सिंह

बनाम

प्रमोद कुमार सिंह

तारीख 31 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति सुनीता अग्रवाल

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13, 20 और 50 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 112] – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए याचिका फाइल किया जाना – पत्नी द्वारा भरण-पोषण का दावा – पति-पत्नी के वैवाहिक संबंध से पुत्र का जन्म होना – बच्चे का जन्म विवाह की तारीख से सात मास की अवधि में होना – पति द्वारा पुत्र का अवैध संबंधों द्वारा पैदा होने का आरोप लगाया जाना और पत्नी द्वारा आरोपों का खंडन किया जाना – पत्नी द्वारा भी याचिका फाइल किया जाना और दहेज का आरोप लगाया जाना – पति द्वारा डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने की प्रार्थना किया जाना – यदि किसी मामले में पत्नी या पति दोनों में से कोई भी इस प्रकार का आरोप लगाता है तो न्यायालय विधि के अधीन अपने विवेक का प्रयोग करते हुए और बच्चे के भविष्य को ध्यान में रखते हुए डी.एन.ए. परीक्षण का आदेश दे सकता है जिससे कि बच्चे के भविष्य पर इसका विपरीत प्रभाव न पड़े ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि वर्तमान याचिका आजमगढ़ के अपर जिला और सेशन न्यायाधीश/त्वरित निपटान न्यायालय संख्या 2 द्वारा पति (इसमें के याची) द्वारा फाइल किए गए आवेदन संख्या 17ग-2 पर तारीख 11 जुलाई, 2017 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की गई है जो 1995 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन 2008 की वैवाहिक याचिका सं. 50 (प्रमोद कुमार सिंह बनाम श्रीमती रेणू सिंह) के रूप में फाइल की गई थी । इसमें का याची उक्त वाद में पत्नी/प्रत्यर्थी है । पक्षों के मध्य विवाह हिन्दू रीति रिवाजों और अनुष्ठानों के अनुसार तारीख 28 जून, 1999 को संपन्न हुआ था । उनके यहां एक बच्चे ने तारीख 31 जनवरी, 2000 को जन्म लिया । यह प्रतीत होता है कि पक्षों के मध्य कुछ विवाद उत्पन्न हुए जिसके परिणामस्वरूप पत्नी अपने पुत्र के साथ अपने

पैतृक घर में रह रही है । पत्नी द्वारा अपने वैवाहिक घर को छोड़ने के संबंध में पक्षों ने परस्पर विरोधी दलीलें दी हैं । वैवाहिक याचिका में पति का दावा है कि पक्षों (पति और पत्नी) ने अपने अपने कुटुंब के सदस्यों के हस्तक्षेप से परस्पर सहमति द्वारा पृथक् रूप से रहना आरंभ कर दिया था और पत्नी तारीख 2 फरवरी, 2000 से अपने पैतृक घर में रह रही है । इसके विपरीत पत्नी का दावा यह है कि उसे तारीख 14 अप्रैल, 2006 को दहेज की मांग के कारण उसके वैवाहिक घर से जबरन निकाल दिया था और तब से वह अपने पैतृक घर में रह रही है । पत्नी द्वारा 2006 का एक शिकायत मामला सं. 1096 (रेणू सिंह बनाम प्रमोद सिंह) तारीख 26 अप्रैल, 2006 को फाइल किया गया था जिसमें संबंधित न्यायालय द्वारा तारीख 12 जुलाई, 2006 को समन करने वाला आदेश पारित किया गया था । उक्त आदेश को दांडिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने के द्वारा इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसकी एक प्रति अभिलेख पर उपलब्ध है । उक्त आवेदन में ये प्रकथन किए गए हैं कि परिवादी पत्नी द्वारा फाइल किए गए आवेदन (आवेदन संख्या 17ग-2) में पति और उसके कुटुंब के अन्य सदस्यों के विरुद्ध लगाए गए आरोप असत्य हैं । पत्नी के पिता माता झूठी शिकायत करने के लिए पत्नी को भड़का रहे थे । पत्नी का कभी न तो उत्पीड़न किया गया था और न ही पति या उसके कुटुंब के लोगों द्वारा दहेज की कोई मांग की गई । तथापि, सुस्पष्ट रूप से, उक्त आवेदन के किसी भी पैराग्राफ में पत्नी के विश्वासघात के बारे में कोई प्रकथन नहीं किया गया है । उक्त आवेदन को इस न्यायालय के समक्ष 2008 के जनवरी मास में फाइल किया गया था । जबकि विवाह-विच्छेद याचिका तारीख 25 जनवरी, 2008 को अर्थात् उसी मास में फाइल की गई थी । पत्नी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन एक आवेदन तारीख 23 मई, 2006 को स्वयं और अपने पुत्र के भरणपोषण की मांग करते हुए फाइल की गई थी जो तारीख 28 नवम्बर, 2011 को प्रदान कर दिया गया था । उक्त कार्यवाही का पति द्वारा विरोध किया गया था और उक्त कार्यवाही में ही प्रथम बार पत्नी के विरुद्ध विश्वासघात के आरोप लगाए गए थे । विवाह-विच्छेद याचिका में, यह निवेदन किया गया कि यद्यपि पति को विवाह के पश्चात् पत्नी की गर्भावस्था की जानकारी थी, तथापि, जब तारीख 31 जनवरी, 2000 को बच्चे का जन्म हुआ तो उसे संदेह हुआ कि उसकी पत्नी के किसी अन्य पुरुष से अवैध संबंध थे, चूंकि विवाह के सात मास के भीतर बच्चे का जन्म

होने का प्रश्न ही नहीं उठता । पति ने बच्चे को अवैध करार देते हुए, निवेदन किया कि वह विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है । पति द्वारा विवाह-विच्छेद याचिका में पत्नी के पुनर्विवाह के बाबत भी आरोप लगाए गए हैं और इकबाल अहमद पुत्र अब्दुल सलाम आयु लगभग 38 वर्ष को विवाह-विच्छेद याचिका में पक्ष बनाया गया है । विवाह-विच्छेद याचिका के लंबित रहने के दौरान पति द्वारा आवेदन 17ग-2 यह प्रार्थना करते हुए फाइल किया गया कि उसका और बच्चे का डी.एन.ए. परीक्षण कराया जाए ताकि उसकी पत्नी के विरुद्ध विश्वासघात के आरोप साबित किया जा सके । इस आवेदन को सामान्य अनुक्रम में मंजूर कर लिया और इसीलिए प्रस्तुत याचिका फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने, डी.एन.ए. परीक्षण से संबंधित विधिक स्थिति और पक्षों द्वारा लिए गए अभिकथित आरोपों को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि यह मामला बच्चे के कल्याण को देखते हुए डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने के प्रक्रम पर अभी नहीं पहुंचा है । आजमगढ़ के कुटुंब न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश ने परस्पर विरोधी प्रकथनों के संबंध में पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार किए बिना ही बच्चे के डी.एन.ए. परीक्षण के लिए निदेश देने में त्रुटि कारित की है । अंगीकृत किए गए ऐसे अनुक्रम को कायम रखे जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती । ऊपर वर्णित कारणोंवश, 2008 की वैवाहिक याचिका सं. 50 (प्रमोद कुमार सिंह बनाम श्रीमती रेणू सिंह) में पति (इसमें याची) द्वारा फाइल किए गए आवेदन 17ग-2 पर अपर जिला और सेशन न्यायाधीश/त्वरित निपटान न्यायालय, न्यायालय सं. 2 आजमगढ़ द्वारा तारीख 11 जुलाई, 2017 को पारित आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं है और इसको एतद्द्वारा इसे अपास्त किया जाता है । वर्तमान याचिका मंजूर की जाती है । (पैरा 17, 18, 19 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	2014 (2) एस. सी. सी. 576 में प्रकाशित : **नंदला वासुदेव बाडवेक** बनाम **लता नंदला बाडवेक और अन्य ;**	8
[2014]	2014 (6) ए. डब्ल्यू. सी. 6073 (एस. सी.) = (2015) 1 एस. सी. सी. 365 में प्रकाशित : **दीपानविता राय** बनाम **रोनोबरोता राय ;**	8

[2010] (2010) 8 एस. सी. सी. 633 :
भाबनी प्रसाद जेना बनाम **कन्वीनर सेक्रेटरी, उड़ीसा स्टेट कमिशनर फार वॉमन और अन्य ।** 14

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2017 का अनुच्छेद 227 के मामला सं. 5234.

भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री अखिलेश कुमार और चन्द्र सेन पाल

प्रत्यर्थी की ओर से श्री शैलेन्द्र सिंह

न्यायमूर्ति सुनीता अग्रवाल – आज फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र को अभिलेख पर लिया गया ।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री चन्द्र सेन पाल और प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री शैलेन्द्र सिंह को सुना । पक्षों के विद्वान् काउंसेलों की सहमति से, वर्तमान याचिका को अंतिम निस्तारण के लिए सुना गया और इसको उन के द्वारा शपथपत्र फाइल किए बिना ही स्वयं ग्रहण करने के प्रक्रम पर निर्णीत किया जा रहा है ।

3. वर्तमान याचिका आजमगढ़ के अपर जिला और सेशन न्यायाधीश/त्वरित निपटान न्यायालय संख्या 2 द्वारा पति (इसमें याची) द्वारा फाइल किए गए आवेदन संख्या 17ग पर तारीख 11 जुलाई, 2017 को पारित आदेश को चुनौती दी गई है जो 1995 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन 2008 की वैवाहिक याचिका सं. 50 (प्रमोद कुमार सिंह बनाम श्रीमती रेणू सिंह) में फाइल किया गया था । इसमें का याची उक्त वाद में पत्नी/प्रत्यर्थी है ।

4. विवाद को निपटाने के लिए ध्यान देने योग्य तथ्य इस प्रकार हैं कि पक्षों के मध्य विवाह हिन्दू रीति रिवाजों और अनुष्ठान के अनुसार तारीख 28 जून, 1999 को संपन्न हुआ था । उनके यहां एक बच्चे ने तारीख 31 जनवरी, 2000 को जन्म लिया था । यह प्रतीत होता है कि पक्षों के मध्य कुछ विवाद उत्पन्न हुए थे जिसके कारणवश पत्नी अपने पुत्र के साथ अपने पैतृक घर में रह रही है । पत्नी द्वारा अपने वैवाहिक घर को छोड़ने के संबंध में पक्षों ने परस्पर विरोधी दलीलें दी हैं । वैवाहिक याचिका में पति का दावा यह है कि पक्षों (पति और पत्नी) ने अपने अपने कुटुंब के

सदस्यों के हस्तक्षेप से परस्पर सहमति द्वारा पृथक् रूप से रहना आरंभ कर दिया था और पत्नी तारीख 2 फरवरी, 2000 से अपने पैतृक घर में रह रही है । इसके विपरीत पत्नी का दावा यह है कि उसे तारीख 14 अप्रैल, 2006 को दहेज की मांग के कारण उसके वैवाहिक घर से जबरन बाहर कर दिया था और तब से वह अपने पैतृक घर में रह रही है ।

5. अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि पत्नी द्वारा 2006 का एक शिकायत मामला सं. 1096 (रेणू सिंह बनाम प्रमोद सिंह) तारीख 26 अप्रैल, 2006 को फाइल किया गया था जिसमें संबंधित न्यायालय द्वारा तारीख 12 जुलाई, 2006 को समन करने वाला आदेश पारित किया गया था । उक्त आदेश को दांडिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने के द्वारा इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, उक्त आवेदन की एक प्रति अभिलेख पर उपलब्ध है । उक्त आवेदन में ये प्रकथन किए गए हैं कि परिवादी पत्नी द्वारा फाइल किए गए आवेदन (आवेदन संख्या 17ग-2) में पति और उसके कुटुंब के अन्य सदस्यों के विरुद्ध लगाए गए आरोप असत्य हैं । पत्नी के पिता माता झूठी शिकायत करने के लिए पत्नी को भड़का रहे थे । पत्नी का कभी न तो उत्पीड़न किया गया था और न ही पति या पति के कुटुंब के लोगों द्वारा दहेज की कोई मांग की गई थी । तथापि, सुस्पष्ट रूप से, उक्त आवेदन के किसी भी पैराग्राफ में पत्नी के विश्वासघात के बारे में कोई प्रकथन नहीं किया गया है । उक्त आवेदन को इस न्यायालय के समक्ष 2008 के जनवरी मास में फाइल किया गया था । जबकि विवाह-विच्छेद याचिका तारीख 25 जनवरी, 2008 को अर्थात् उसी मास में फाइल की गई थी ।

6. यह भी ध्यान देने योग्य है कि पत्नी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन एक आवेदन तारीख 23 मई, 2006 को स्वयं अपने पुत्र के लिए भरणपोषण की मांग करते हुए फाइल किया गया था जो तारीख 28 नवम्बर, 2011 को प्रदान कर दिया गया था । उक्त कार्यवाही का पति द्वारा विरोध किया गया था और उक्त कार्यवाही में ही प्रथम बार पत्नी के विरुद्ध विश्वासघात के आरोप लगाए गए थे । विवाह-विच्छेद याचिका में, यह निवेदन किया गया कि यद्यपि पति को विवाह के पश्चात् पत्नी की गर्भावस्था की जानकारी थी, तथापि, जब तारीख 31 जनवरी, 2000 को बच्चे का जन्म हुआ तो उसे संदेह हुआ कि उसकी पत्नी के किसी अन्य पुरुष से अवैध संबंध थे चूंकि विवाह के सात मास के भीतर बच्चे का जन्म होने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

7. पति ने बच्चे को अवैध करार देते हुए, निवेदन किया कि वह विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार है । पति द्वारा विवाह-विच्छेद याचिका में पत्नी के पुनर्विवाह के बाबत भी आरोप लगाए गए हैं और इकबाल अहमद पुत्र अब्दुल सलाम आयु लगभग 38 वर्ष को विवाह-विच्छेद याचिका में पक्ष बनाया गया है ।

8. विवाह-विच्छेद याचिका के लंबित रहने के दौरान पति द्वारा आवेदन 17ग-2 यह प्रार्थना करते हुए फाइल किया गया कि उसका और बच्चे का डी.एन.ए. परीक्षण कराया जाए ताकि उसकी पत्नी के विरुद्ध विश्वासघात का आरोप साबित किया जा सके । इस आवेदन को **नंदलाल वासुदेव बाडवेक** बनाम **लता नंदलाल बाडवेक और अन्य**[1] और **दीपानविता राय** बनाम **रोनोबरोता राय**[2] वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लेते हुए सामान्य अनुक्रम में मंजूर कर लिया और इसीलिए यह याचिका फाइल की गई है ।

9. याची की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध लगाए गए विश्वासघात के आरोप पत्नी द्वारा दहेज की मांग और भरणपोषण के दावों को आरंभ किए जाने की कार्यवाहियों की प्रतिक्रिया है । विवाह-विच्छेद याचिका में लगाए गए आरोप आधारहीन हैं । कुटुंब न्यायालय के समक्ष पर्याप्त दस्तावेजी साक्ष्य यह साबित करने के लिए फाइल किए गए हैं कि बच्चा पक्षों का विवाह संपन्न होने के पश्चात् विवाह बंधन से उत्पन्न हुआ और किसी अन्य पुरुष के साथ पत्नी के अवैध संबंध होने के आरोप आधारहीन हैं । यह निवेदन किया गया है कि कुटुंब न्यायालय डी.एन.ए. परीक्षण संचालित कराए जाने वाला आदेश उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर गंभीरतापूर्वक विचार किए बिना मात्र विवाह-विच्छेद याचिका में किए गए अभिकथनों के आधार पर सामान्य अनुक्रम में पारित नहीं कर सकता था ।

10. इसके विपरीत, पति के विद्वान् काउंसेल ने **दीपानविता राय** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि उस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देशित किया है कि पत्नी पर विश्वासघात के आरोप के मामले में पति के लिए अभिवचन में किए गए अभिवाकों को साबित करना और उनकी पुष्टि करना असंभव होगा ।

---

[1] (2014) 2 एस. सी. सी. 576.

[2] 2014 (6) ए. डब्ल्यू. सी. 6073 (एस. सी.) = (2015) 1 एस. सी. सी. 365.

डी.एन.ए. परीक्षण बहुत ही न्यायसंगत और वैज्ञानिक रूप से उत्तम साधन है जिसका प्रयोग पति विश्सवासघात के अपने अभिकथन को सिद्ध करने के लिए कर सकता है । पत्नी के लिए भी उसके पति के प्रकथनों का खंडन करने और यह साबित करना कि वह अपने पति के प्रति निष्ठावान थी और कभी भी व्यभिचारिणी और विश्वासघाती नहीं थी, यह अत्यधिक प्रामाणिक, यथोचित और सही साधन है । डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने पर परिदृश्य स्पष्ट हो जाएगा तो इसे साबित कर सकेगी । वह डी.एन.ए. परीक्षण का विरोध नहीं कर सकती जिसके द्वारा बच्चे की वैधता निश्चित रूप से साबित हो जाएगी ।

11. पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा किए गए निवेदनों और ऊपर वर्णित तथ्यों पर विचार करते हुए, पति के विद्वान् काउंसेल द्वारा इस विवाह-विच्छेद याचिका को फाइल किए जाने के प्रक्रम के बारे में एक विशिष्ट प्रश्न विवाह-याचिका के प्रक्रम के संबंध में पति के विद्वान् काउंसेल ने किया । पत्नी द्वारा फाइल किए गए कुछ साक्ष्यों जिनको इस याचिका के साथ संलग्न किया गया है पर भी विचार किया गया है । अभिकथन की प्रकृति और पत्नी द्वारा फाइल किए गए साक्ष्यों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का प्रथमदृष्ट्या यह मत है कि यह प्रश्न कि क्या बच्चे का जन्म पक्षों के विवाह बंधन के परिणामस्वरूप हुआ था और क्या विश्वासघात के आरोप असत्य हैं, की परीक्षण विवाह-विच्छेद याचिका के अधिमूल्यन के पश्चात् किया जाना चाहिए ।

12. विवाह-विच्छेद याचिका में स्वयमेव पति द्वारा किए गए प्रकथनों के अनुसार यह तथ्य है कि पक्षों के मध्य विवाह तारीख 28 जून, 1999 को संपन्न हुआ था और विवाह पूर्णता को प्राप्त हो गया था । पत्नी के विरुद्ध आरोप बच्चे के समयपूर्व जन्म अर्थात् विवाह की तारीख से लगभग सात मास की अवधि के पश्चात् ही पैदा हो जाने के कारण लगाए गए हैं । विवाह-विच्छेद याचिका में किए गए अभिकथन ये हैं कि पत्नी ने स्वीकार किया था कि बच्चा अवैध है । इसलिए, कुटुंब न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उद्भूत होता है कि इस बाबत पता लगाया जाए कौन सच बोल रहा है । पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का अभी तक कुटुंब न्यायालय द्वारा परीक्षण किया गया है और फिर भी उसने यांत्रिक तरीके से डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने के लिए निर्देशित कर दिया है ।

13. जहां तक **दीपानविता राय** (उपरोक्त) वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई मताभिव्यक्ति का संबंध है, इसके तथ्य के बारे में

कोई विवाद नहीं है कि पत्नी द्वारा अभिकथित रूप से विश्वासघात के संबंध में, 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद याचिका फाइल किए जाने के लिए डी.एन.ए. परीक्षण अत्यधिक वैध और वैज्ञानिक रूप से उत्तम पद्धति है ।

14. तथापि, जहां तक डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने के प्रक्रम का संबंध है और वे विचार जिनका ऐसे किसी विकल्प पर पहुंचने के पूर्व ध्यान में रखा जाना अपेक्षित है, **भवानी प्रसाद जेना** बनाम **कन्वीनर सेक्रेटरी, उड़ीसा स्टेट कमिशनर फार वॉमन और अन्य**[1] वाले मामले उच्चतम न्यायालय द्वारा की मताभिव्यक्ति विचार में लिए जाने के प्रयोजनार्थ सुसंगत है । उस मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी बच्चे के पितृत्व से संबंधित मामले में न्यायालय द्वारा डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने के लिए निर्देश सामान्य या नियमित अनुक्रम में नहीं दिए जाने चाहिए । जहां कहीं भी ऐसा अनुरोध किया गया है, न्यायालय के साक्ष्य अधिनियम की धारा 12 के अधीन उपधारणा सहित विविध पहलुओं; ऐसे आदेश के पक्ष-विपक्ष और "प्रतिष्ठित आवश्यकता" का परीक्षण कि क्या न्यायालय के लिए ऐसे परीक्षण के प्रयोग के बिना सत्य तक पहुंचना संभव नहीं है, विचार करना चाहिए । डी.एन.ए. परीक्षण के लिए कोई आदेश या निदेश केवल न्यायालय द्वारा ही दिया जा सकता है जब ऐसे किसी अनुक्रम के लिए मामला प्रथमदृष्ट्या मजबूत मामला बनता हो ।

15. उक्त रिपोर्ट के सुसंगत पैराग्राफ 21,22 और 23 को उद्धृत किया है जो इस प्रकार है :-

> 21. किसी मामले में, जहां न्यायालय के समक्ष बच्चे के पितृत्व का विवाद्यक है, डी.एन.ए. का प्रयोग एक अत्यधिक नाजुक और संवेदनशील पहलू है । एक राय यह है कि जब आधुनिक विज्ञान किसी बच्चे के पितृत्व को अभिनिश्चित करने का साधन देता है, तो जब कभी भी किसी अवसर पर ऐसा किया जाना अपेक्षित हो, उन साधनों का प्रयोग करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए दूसरा मत यह है कि न्यायालय को ऐसी वैज्ञानिक प्रगति और उपकरणों के प्रयोग में अनिच्छुक होना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप किसी की वैयक्तिगत गोपनीयता के अधिकार का अतिक्रमण होता हो न केवल और पक्षों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला हो बल्कि

[1] (2010) 8 एस. सी. सी. 633.

बच्चे पर भयानक प्रभाव डालने वाला हो । कभी-कभी ऐसे वैज्ञानिक परीक्षण के परिणाम किसी मासूम बच्चे को दोगला ठहरा सकते हैं यद्यपि उसके पिता माता गर्भधारण के समय एक साथ रह रहे थे ।

22. हमारी राय में, जब किसी व्यक्ति की निजता के अधिकारों के संबंध में उसको स्वयं को बलपूर्वक चिकित्सीय परीक्षण के लिए प्रस्तुत किए जाने और न्यायालय के सत्य पर पहुंचने के लिए कर्तव्य के मध्य स्पष्ट रूप से टकराव है, तो न्यायालय को पक्षों के हितों को संतुलित करने के पश्चात् और इस पर विचारोपरांत कि क्या किसी मामले में निष्पक्ष विनिश्चय पर पहुंचने के लिए डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने की अत्यंत आवश्यकता है, अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए । किसी बच्चे के पितृत्व से संबंधित मामले में डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने के लिए जब कभी भी ऐसा अनुरोध किया जाए, न्यायालय द्वारा सामान्य अनुक्रम में या नैत्यिक तरीके से निर्देशित नहीं किया जाना चाहिए । न्यायालय को साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 के अधीन उपधारणा सहित विविध पहलुओं, ऐसे आदेश के पक्ष-विपक्ष और "अत्यंत आवश्यकता" के परीक्षण कि क्या न्यायालय ऐसे परीक्षण संचालित कराए बिना सत्य का पता नहीं लगा सकता था, पर विचार करना चाहिए ।

23. इस न्यायालय द्वारा दिए गए दोनों विनिश्चयों अर्थात् गौतम कूंडू वाले मामले और शारदा वाले मामले में दिए गए विनिश्चयों के मध्य कोई टकराव नहीं है । गौतम कुंडू वाले मामले में यह अधिकथित किया गया है कि भारत में न्यायालय सामान्य अनुक्रम में खून का परीक्षण के लिए निर्देशित नहीं कर सकते और ऐसे अनुरोधों को घूमवादार जांच कराए जाने के लिए मंजूरी नहीं दी जा सकती; इसके लिए प्रथमदृष्ट्या मामला होना चाहिए और न्यायालय को इस बात का सावधानीपूर्वक परीक्षण करना चाहिए कि खून का परीक्षण का आदेश पारित करने के क्या परिणाम होंगे । शारदा वाले मामले में यह निष्कर्ष निकालते हुए कि वैवाहिक न्यायालय को किसी व्यक्ति का चिकित्सीय परीक्षण कराने के लिए आदेश पारित करने की शक्ति प्राप्त है, इस बात को दोहराया गया कि न्यायालय को किसी शक्ति का प्रयोग तब करना चाहिए यदि अपीलार्थी का प्रथमदृष्ट्या मामला मजबूत है और इसमें न्यायालय के समक्ष पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो । इसलिए, स्पष्टतः डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने के प्रयोजनार्थ कोई

आदेश न्यायालय द्वारा केवल तब दिया जा सकता है यदि ऐसे आदेश के लिए मजबूत प्रथमदृष्ट्या मामला बनता हो ।

16. यहां तक कि **दीपानविता राय** (उपरोक्त) वाले मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने **भवानी प्रसाद जेना** (उपरोक्त) वाले मामले पर विचार करते हुए पैराग्राफ 10 में यह मताभिव्यक्त की :–

> "10. **भवानी प्रसाद जेना** (उपरोक्त) और **नंदलाल वासुदेव बडवेक** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों से स्पष्ट होता है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर रहते हुए, न्यायालय के लिए यह अनुज्ञेय होगा कि आरोपों की यथार्थता जो उसके आधारों में से आधार किसी एक आधार को करती है, को निर्धारित करने के लिए डी.एन.ए. परीक्षण कराए, जिसके आधार पर दोनों में से कोई एक पक्ष या तो जीतेगा या हारेगा । इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता है कि यदि ऐसे किसी परीक्षण को कराए जाने के निदेश को टाला जा सकता है तो इसे टाला जाना चाहिए । इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में पहले से अभिलिखित कारण यह है कि बच्चे की वैधता को खतरे में नहीं डाला जाना चाहिए ।"

17. डी.एन.ए. परीक्षण से संबंधित विधिक स्थिति और पक्षों द्वारा लिए गए अभिकथित आरोपों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि यह मामला बच्चे के कल्याण को देखते हुए डी.एन.ए. परीक्षण कराए जाने के प्रक्रम पर अभी नहीं पहुंचा है ।

18. आजमगढ़ के कुटुंब न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश ने परस्पर विरोधी प्रकथनों के संबंध में पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार किए बिना बच्चे के डी.एन.ए. परीक्षण के लिए निदेश देने में त्रुटि कारित की है । अंगीकृत किए गए ऐसे अनुक्रम को कायम रखे जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती ।

19. ऊपर वर्णित कारणोंवश, 2008 की वैवाहिक याचिका सं. 50 (प्रमोद कुमार सिंह बनाम श्रीमती रेणू सिंह) में पति (इसमें के याची) द्वारा फाइल किए गए आवेदन 17ग-2 पर अपर जिला और सेशन न्यायाधीश/त्वरित निपटान न्यायालय, न्यायालय सं. 2 आजमगढ़ द्वारा तारीख 11 जुलाई, 2017 को पारित आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं है और इसको एतद्द्वारा इसे अपास्त किया जाता है ।

20. वर्तमान याचिका मंजूर की जाती है ।

21. आजमगढ़ के कुटुंब न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश को विवाह-विच्छेद याचिका में आगे की कार्यवाही करने के लिए निर्देशित किया जाता है और उसे इस आदेश की प्रमाणिक प्रति के प्रस्तुत करने का तारीख से अधिमानतः छह मास की अवधि के भीतर उसको विनिश्चित करने के लिए निर्देशित किया जाता है ।

22. आजमगढ़ के कुटुंब न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश को ऐसे संवेदनशील मामलों पर विचार करने के दौरान उपरोक्त उल्लेखित सिद्धांतों को ध्यान में रखें और यांत्रीय और नियमित रीति में, कारणरहित आदेश पारित करने से बचने के लिए निर्देशित किया जाता है । यहां पर यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि संबंधित न्यायालय को इसमें इसके ऊपर की गई मताभिव्यक्तियों से प्रभावित हुए बिना पक्षों के साक्ष्य के आधार पर किसी स्वतंत्र निर्णय पर पहुंचना होगा ।

याचिका मंजूर की गई ।

मही./अवि.

(2018) 2 सि. नि. प. 163 **उत्तराखंड**

ओरियंटल एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

श्रीमती बब्बो और अन्य

तारीख 1 जून, 2017

न्यायमूर्ति सर्वेश कुमार गुप्ता

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 173 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 6] – दुर्घटना और प्रतिकर – दुर्घटना कारित करने वाले व्यक्ति द्वारा दुर्घटना से इनकार किया जाना – दुर्घटना की सूचना किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा अपठनीय हस्ताक्षर युक्त आवेदन के माध्यम से पुलिस थाना में प्राप्त कराया जाना – दुर्घटना में प्रयुक्त मोटर साइकिल का रजिस्ट्रीकरण संख्या और उसके चालक का नाम उल्लेख प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या दावा याचिका में न किया

जाना और उसके विरुद्ध कोई अभियोजन संचालित न किया जाना – दुर्घटना के आठ वर्ष पश्चात् दावा याचिका फाइल किया जाना – मृतक की पत्नी द्वारा अपने रिहायशी पते के बाबत असंगत कथन किया जाना – दुर्घटना के साक्ष्य में समाचारपत्र की तारीख रहित कटिंग फाइल किया जाना – बीमा कम्पनी किसी भी प्रतिकर के संदाय की दायी नहीं है, दावा याचिका खारिज किए जाने योग्य है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि दुर्घटना तारीख 30 मई, 2003 को अपराह्न 4 बजे घटी जब मृतक मकसूद हुसैन, आयु 34 वर्ष अपनी मोटरसाइकिल सं. यू पी 21 एल 0237 पर यात्रा कर रहा था, और उसे पवन अरोड़ा नामक एक अन्य मोटरसाइकिल सवार जो अपनी स्वयं की मोटरसाइकिल संख्या यू पी 04 बी 5461 पर कथित रूप से यात्रा कर रहा था, के टक्कर मार दी । दुर्घटना पुलिस थाना ठाकुरद्वारा के अधिकार क्षेत्र के भीतर ठाकुरद्वारा-काशीपुर रोड पर घटित हुई थी और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुलिस स्टेशन ठाकुरद्वारा में तारीख 1 जून, 2003 को मृतक के भाई जब्बार खान ने दर्ज कराई थी । मकसूद हुसैन उक्त दुर्घटना में गंभीर रूप से घायल हुआ था और अस्पताल में भर्ती करने के लिए ले जाते समय उसकी मृत्यु हो गई थी । 2011 की दावा याचिका संख्या 367 तारीख 11 अक्तूबर, 2011 को अर्थात् दुर्घटना के लगभग आठ वर्ष और 6 महीने पश्चात् मकसूद हुसैन के आश्रितों द्वारा दस लाख रुपए के प्रतिकर का दावा करते हुए फाइल की गई थी, जिसके विरुद्ध अधिकरण ने 4,70,000/- रुपए प्रदान किए जाने का आदेश पारित कर दिया था । प्रतिकर की मंजूरी को बीमा कंपनी द्वारा 2016 की ए.ओ. संख्या 92 फाइल करके चुनौती दी गई है जबकि दूसरी दावेदारों द्वारा 2006 की ए.ओ. संख्या 95 फाइल किए जाने के द्वारा प्रतिकर को बढ़ाए जाने की ईप्सा की गई है । दावा याचिका खारिज करते हुए और बीमा कंपनी की अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि श्री पवन अरोड़ा ने अधिकरण के समक्ष अपना लिखित अभिकथन प्रस्तुत किया और यह प्रकथन करते हुए ऐसी किसी घटना के घटित होने के बारे में इनकार किया कि वस्तुतः यह रिपोर्ट पुलिस थाना में कभी दर्ज नहीं कराई जा सकी किन्तु जब्बार खान ने बीमा कंपनी के विरुद्ध झूठा दावा करने की योजना के अंतर्गत किसी व्यक्ति के अपठनीय हस्ताक्षरों से युक्त एक आवेदन पुलिस थाना में प्राप्त कराया था । श्री पवन अरोड़ा की मोटरसाइकिल का रजिस्ट्रीकरण संख्या न तो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में

दर्शाया गया है और न ही उसका प्रकटीकरण दावा याचिका में किया गया है और पवन अरोड़ा का नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी उल्लिखित नहीं किया । पवन अरोड़ा को कभी गिरफ्तार भी नहीं किया और न ही उसके विरुद्ध कभी कोई अभियोजन संचालित किया गया । इसके अलावा, इस दावा याचिका को दुर्घटना के लगभग 8 वर्ष और 6 माह पश्चात् अत्यधिक विलंब के साथ फाइल किया गया है । इसमें यह भी उपदर्शित होता है कि ऐसी कोई दुर्घटना कभी भी घटित नहीं हुई थी । बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन भी किया है कि काशीपुर में स्थित अधिकरण को इस कारणवश क्षेत्रीय अधिकारिता प्राप्त नहीं थी कि तथाकथित दुर्घटना पुलिस स्टेशन ठाकुरद्वारा, जिला मुरादाबाद के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत घटित हुई थी । मृतक की पत्नी अभि. सा. श्रीमती बब्बो ने साक्षी कठघरा में अपना पता ग्राम शमालखेड़ा, पुलिस स्टेशन दिलारी, जिला मुरादाबाद के निवासी के रूप में उल्लिखित कराया है । अतः इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने काशीपुर न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता सृजित किए जाने के प्रयोजनार्थ अपना पता ग्राम इस्लामनगर बसाई, तहसील काशीपुर, जिला उधम सिंह नगर के निवासी जियाउलहसन के माध्यम से दर्शाया है । तथापि, उसके द्वारा इस असंगत कथन के लिए कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया है । दावेदारों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय का ध्यान दैनिक समाचारपत्र अमर उजाला की कटिंग जो पेपर संख्या 6ग/6 है, की ओर आकर्षित किया है जिसमें प्रकाशित है कि दो मोटरसाइकिलों की एक दुर्घटना घटित हुई जिसके परिणामस्वरूप मकसूद हुसैन नामक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और अन्य दो व्यक्तियों को क्षति कारित हुई । किन्तु प्रथमतः यह समाचारपत्र कटिंग, साक्ष्य में अनुज्ञेय नहीं है और द्वितीयतः इस समाचारपत्र कटिंग को इस प्रयोजनार्थ साबित भी नहीं किया गया है कि यह रिपोर्ट निर्णायक रूप से तारीख 31 मई, 2003 की है और कैसी एक अनपढ़ महिला श्रीमती बब्बो अपने अवयस्क बच्चे के साथ किसी ऐसे समाचारपत्र की कटिंग को प्राप्त करने में समर्थ हो सकी जो दावा याचिका फाइल करने के लगभग 8 वर्ष और छह माह पूर्व प्रकाशित हुआ था । अतः इस बात की पूर्ण संभावना है कि यह समाचारपत्र तारीख 31 मई, 2003 का ना हो बल्कि इसे याचिका फाइल किए जाने से तुरंत पूर्व प्रतिकर के लिए झूठी याचिका फाइल किए जाने की तैयारी के प्रयोजनार्थ किसी भी प्रकार से समाचारपत्र में जैसे तैसे हेराफेरी करके प्रकाशित कराया गया हो । (पैरा 5, 6, 7, 8 और 9)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : **2016 के आदेश अपील सं. 92 और 2016 के आदेश अपील सं. 95**

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मोहम्मद अज़ीम

प्रत्यर्थी सं.1 की ओर से श्री डी. सी. एस. रावत

प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से श्री पंकज पुरोहित

न्यायमूर्ति सर्वेश कुमार गुप्ता – उपरोक्त शीर्षांकित दोनों अपीलें तारीख 2 दिसम्बर, 2015 के एक ही निर्णय और आदेश से उद्‌भूत हुई हैं और पक्षों के विद्वान् काउंसेलों के इन अपीलों को सुनवाई के प्रयोजनार्थ ग्रहण किए जाने के ही प्रक्रम पर विस्तारपूर्वक सुना गया है इसलिए दोनों ही अपीलों का अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन निम्नानुसार किया जा रहा है ।

2. जैसाकि दावा किया गया है दुर्घटना तारीख 30 मई, 2003 को अपराह्न 4 बजे घटी जब मृतक मकसूद हुसैन, आयु 34 वर्ष अपनी मोटरसाइकिल सं. यू पी 21 एल 0237 पर यात्रा कर रहा था, और उसे पवन अरोड़ा नामक एक अन्य मोटरसाइकिल सवार जो अपनी स्वयं की मोटरसाइकिल संख्या यू पी 04 बी 5461 पर कथित रूप से यात्रा कर रहा था, के टक्कर मार दी । दुर्घटना पुलिस थाना ठाकुरद्वारा के अधिकारक्षेत्र के भीतर ठाकुरद्वारा-काशीपुर रोड पर घटित हुई थी और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुलिस स्टेशन ठाकुरद्वारा में तारीख 1 जून, 2003 को मृतक के भाई जब्बार खान ने दर्ज कराई थी । मकसूद हुसैन उक्त दुर्घटना में गंभीर रूप से घायल हुआ था और अस्पताल में भर्ती करने के लिए ले जाते समय उसकी मृत्यु हो गई थी ।

3. 2011 की दावा याचिका संख्या 367 तारीख 11 अक्तूबर, 2011 को अर्थात् दुर्घटना के लगभग आठ वर्ष और 6 महीने पश्चात् मकसूद हुसैन के आश्रितों द्वारा दस लाख रुपए के प्रतिकर का दावा करते हुए फाइल की गई थी, जिसके विरुद्ध अधिकरण ने 4,70,000/- रुपए प्रदान किए जाने का आदेश पारित कर दिया था ।

4. प्रतिकर की मंजूरी को बीमा कंपनी द्वारा 2016 की ए.ओ. संख्या 92 फाइल करके चुनौती दी गई है जबकि दूसरी दावेदारों द्वारा 2006 की ए.ओ. संख्या 95 फाइल किए जाने के द्वारा प्रतिकर को बढ़ाए जाने की

ईप्सा की गई है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि श्री पवन अरोड़ा की मोटरसाइकिल ऑरियंटल बीमा कंपनी, जो इस अपील में अपीलार्थी है, द्वारा बीमाकृत थी ।

5. बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि श्री पवन अरोड़ा ने अधिकरण के समक्ष अपना लिखित अभिकथन प्रस्तुत किया और यह प्रकथन करते हुए ऐसी किसी घटना के घटित होने के बारे में इनकार किया कि वस्तुतः यह रिपोर्ट पुलिस थाना में कभी दर्ज नहीं कराई जा सकी किन्तु जब्बार खान ने बीमा कंपनी के विरुद्ध झूठा दावा करने की योजना के अंतर्गत किसी व्यक्ति के अपठनीय हस्ताक्षरों से युक्त एक आवेदन पुलिस थाना में प्राप्त कराया था । श्री पवन अरोड़ा की मोटरसाइकिल का रजिस्ट्रीकरण संख्या न तो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में दर्शाया गया है और न ही उसका प्रकटीकरण दावा याचिका में किया गया है और पवन अरोड़ा का नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भी उल्लिखित नहीं किया । पवन अरोड़ा को कभी गिरफ्तार भी नहीं किया और न ही उसके विरुद्ध कभी कोई अभियोजन संचालित किया गया ।

6. इसके अलावा, इस दावा याचिका को दुर्घटना के लगभग 8 वर्ष और 6 माह पश्चात् अत्यधिक विलंब के साथ फाइल किया गया है । इसमें यह भी उपदर्शित होता है कि ऐसी कोई दुर्घटना कभी भी घटित नहीं हुई थी ।

7. बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन भी किया है कि काशीपुर में स्थित अधिकरण को इस कारणवश क्षेत्रीय अधिकारिता प्राप्त नहीं थी कि तथाकथित दुर्घटना पुलिस स्टेशन ठाकुरद्वारा, जिला मुरादाबाद के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत घटित हुई थी । मृतक की पत्नी अभि. सा. श्रीमती बब्बो ने साक्षी कठघरा में अपना पता ग्राम शमालखेड़ा, पुलिस स्टेशन दिलारी, जिला मुरादाबाद के निवासी के रूप में उल्लिखित कराया है । अतः इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने काशीपुर न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता सृजित किए जाने के प्रयोजनार्थ अपना पता ग्राम इस्लामनगर बसाई, तहसील काशीपुर, जिला उधम सिंह नगर के निवासी जियाउलहसन के माध्यम से दर्शाया है । तथापि, उसके द्वारा इस असंगत कथन के लिए कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया है ।

8. दावेदारों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय

का ध्यान दैनिक समाचारपत्र अमर उजाला की कटिंग जो पेपर संख्या 6ग/6 है, की ओर आकर्षित किया है जिसमें प्रकाशित है कि दो मोटरसाइकिलों की एक दुर्घटना घटित हुई जिसके परिणामस्वरूप मकसूद हुसैन नामक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और अन्य दो व्यक्तियों को क्षति कारित हुई । किन्तु प्रथमतः यह समाचारपत्र कटिंग, साक्ष्य में अनुज्ञेय नहीं है और द्वितीयतः इस समाचारपत्र कटिंग को इस प्रयोजनार्थ साबित भी नहीं किया गया है कि यह रिपोर्ट निर्णायक रूप से तारीख 31 मई, 2003 की है और कैसी एक अनपढ़ महिला श्रीमती बब्बो अपने अवयस्क बच्चे के साथ किसी ऐसे समाचारपत्र की कटिंग को प्राप्त करने में समर्थ हो सकी जो दावा याचिका फाइल करने के लगभग 8 वर्ष और छह माह पूर्व प्रकाशित हुआ था ।

9. अतः इस बात की पूर्ण संभावना है कि यह समाचारपत्र तारीख 31 मई, 2003 का ना हो बल्कि इसे याचिका फाइल किए जाने से तुरंत पूर्व प्रतिकर के लिए झूठी याचिका फाइल किए जाने की तैयारी के प्रयोजनार्थ किसी भी प्रकार से समाचारपत्र में जैसे-तैसे हेराफेरी करके प्रकाशित कराया गया हो ।

10. जैसा ऊपर उल्लिखित किया गया है, को दृष्टि में रखते हुए, मैं आपेक्षित निर्णय और आदेश को अपास्त करता हूं । परिणामस्वरूप, दावेदारों द्वारा फाइल की गई 2016 की ए.ओ. संख्या 95 खारिज की जाती है और बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई 2016 की ए.ओ. संख्या 92 को मंजूर किया जाता है ।

11. रजिस्ट्री अनिवार्य सांविधिक धनराशि को उपार्जित ब्याज के साथ संबंधित अधिकरण को तुरंत वापस करेगी । बीमा कंपनी द्वारा जमा कराई गई धनराशि और उस पर अर्जित ब्याज और इस न्यायालय की रजिस्ट्री द्वारा वापस की गई राशि बीमा कंपनी को तुरंत वापस की जाएगी । दावेदारों के पक्ष में पहले से निर्गत धनराशि को बीमा कंपनी की पहल पर उनसे निर्गत किए जाने की तारीख से 6 प्रतिशित साधारण वार्षिक ब्याज की दर के साथ वसूला जाएगा ।

दावा याचिका खारिज की गई ।

मही./अवि.

अक्षय झुनझुनवाला

बनाम

भारत संघ

तारीख 2 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति देबांसू बसक

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (2016 का 31) – धारा 7, 8 और 9 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14 और 15] – निगमित देनदार को ऋण देने वाले वित्तीय लेनदारों और उसके साथ व्यापार करने वाले लेनदारों के मध्य विभेद – युक्तिसंगत और बोधगम्य आधार का अभाव – वित्तीय लेनदार को व्यापार करने वाले लेनदार के मुकाबले अनुचित रूप से अधिमान प्रदान किया जाना – वित्तीय लेनदार का दावा परिसमापन से उत्पन्न होता है जबकि व्यापार करने वाले लेनदार का दावा कारबार के सामान्य अनुक्रम में उत्पन्न होता है – लेनदारों के मध्य वर्गीकरण तभी अनुज्ञेय होगा यदि वह युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित हो – निगमित देनदार के लेनदारों के संबंध में 2016 की संहिता द्वारा रेखांकित वैशिष्ट्य संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण नहीं करते – न्यायालयों को विधानों, विशेष रूप से आर्थिक अधिक्षेत्र के विधानों पर विचार करते हुए कानून की संवैधानिकता के पक्ष में उपधारणा करनी चाहिए – किसी कम्पनी की दिवाला प्रक्रिया में वित्तीय लेनदार के साथ विशिष्ट व्यवहार के बाबत यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण किया गया है ।

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 – धारा 3, 5, 7, 8 और 9 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14 और 15] – निगमित देनदार को ऋण देने वाले वित्तीय लेनदारों और उसके साथ व्यापार करने वाले लेनदारों के मध्य विभेद – युक्तिसंगत और बोधगम्य आधार का अभाव – लेनदारों की समिति के सदस्य वे लेनदार होने चाहिएं जिनमें जीवन क्षमता का अनुगमन करने और शर्तों को उपांतरित करने की क्षमता हो – व्यापार करने वाले लेनदार न तो दिवाला अस्तित्व के संबंध में मामले का निर्णय करने में समर्थ होते हैं और न ही उसके भविष्य की उत्तम संभावनाओं के लिए अपने संदायों को टालने का जोखिम लेने के

इच्छुक होते हैं – दिवाला प्रक्रिया के तीव्र गति वाली और प्रभावी होने के लिए यह आवश्यक है कि लेनदारों की समिति में केवल वित्तीय लेनदार हों ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि द्वितीय प्रत्यर्थी एक निगमित देनदार है जिसके संबंध में 2016 की संहिता के अन्तर्गत कोलकाता के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ कार्यवाही लम्बित हैं । उसके अनुसार 2016 की संहिता निगमित देनदार को ऋण देने वाले वित्तीय लेनदार और उसके साथ व्यापार करने वाले लेनदार के मध्य निगमित देनदार के संबंध में विभेद करती है जिसका कोई युक्तिसंगत और बोधगम्य आधार नहीं है, इन दोनों श्रेणियों के लेनदारों के मध्य विभेद युक्तिसंगत और बोधगम्य आधार पर आधारित न होने के कारण, 2016 की संहिता की धारा 7, 8 और 9 के उपबंध समाप्त कर दिए जाने चाहिए । उसने निवेदन किया कि वित्तीय लेनदार को अनुचित रूप से अधिमान प्रदान किया गया है, वित्तीय लेनदार को दिवाला कार्यवाहियों के संबंध में किसी निगमित देनदार की लेनदारों की समिति में होने का अधिकार प्राप्त है, यद्यपि यह संभव है कि निगमित देनदार के साथ व्यापार करने वाले लेनदार को वित्तीय लेनदार के मुकाबले दावा करने के अधिक अधिकार प्राप्त हो, फिर भी उसको लेनदारों की समिति में अपनी बात रखने का कोई अधिकार नहीं है । उसके अनुसार एक ऐसी भी स्थिति हो सकती है जिसमें यह संभव हो कि निगमित देनदार का केवल एक ही वित्तीय लेनदार हो । ऐसा वित्तीय लेनदार निगमित देनदार के साथ व्यापार करने वाले लेनदार को सम्मिलित करते हुए उस निगमित देनदार के लेनदारों की अन्य श्रेणियों द्वारा बिना किसी भागीदारी के लेनदारों की समिति गठित करेगा, यद्यपि निगमित देनदार के साथ व्यापार करने वाला वह लेनदार किसी विनिर्दिष्ट स्थिति में वित्तीय लेनदार से अधिक दावा रख सकता है और यह भी संभव है कि निगमित देनदार के साथ व्यापार करने वाले लेनदारों की संख्या वित्तीय लेनदारों से अधिक हो । उसके अनुसार एक ही वित्तीय लेनदार के संबंध में दोनों श्रेणियों के लेनदारों के मध्य इस प्रकार का विभेद अनुचित, पक्षपातपूर्ण, अव्यवहारिक और असंगत है और इसका किसी भी न्यायालय द्वारा अनुमोदन नहीं किया जा सकता । उसके अनुसार वे विभेद, जिनको किसी निगमित देनदार के लिए वित्तीय संव्यवहार और व्यापार करने वाले संव्यवहारों से उद्भूत लेनदारों के संबंध में किए जाने की ईप्सा 2016 की संहिता द्वारा की गई है, को याचियों के विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा रेखांकित किया गया है । उन्होंने 2016 की संहिता

की धाराओं 3(6), (10), (11), (12), धारा (6), (7), (8), (20), (21), धारा 6, धारा 7, धारा 8 और धारा 9 को निर्दिष्ट किया है । याचियों ने 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7, 8 और 9 की विद्यमानता को चुनौती दी है । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – 2016 की संहिता विधिक अस्तित्वों और साथ ही नैसर्गिक व्यक्तियों के दिवालापन पर विचार करती है । यद्यपि 2016 की संहिता के कुछ उपबंध तारीख 28 मई, 2016 को प्रभावी हुए थे, फिर भी 2016 की संहिता के उपबंध, जिनको इस याचिका में चुनौती दी गई है, तारीख 1 दिसम्बर, 2016 को प्रभावी हुए । उसके पहले 2013 की कम्पनी विधि और उसके भी पहले 1956 की कम्पनी विधि किसी कम्पनी, जो उक्त अधिनियमों के अधीन निगमित हुई थी या विद्यमान थी, दिवाला से संबंधित विवाद्यकों पर विचार करती थी । किसी भी कम्पनी में विभिन्न पणधारी होते हैं । किसी भी कम्पनी के लेनदार भी उसके पणधारी होते हैं । 2016 की संहिता द्वारा रेखांकित वित्तीय लेनदारों और व्यापार करने वाले लेनदारों की संकल्पना के पूर्व किसी कम्पनी के लेनदारों को व्यापक रूप से तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता था अर्थात् सुरक्षित लेनदार, असुरक्षित लेनदार और कानूनी लेनदार के रूप में । 2016 की संहिता किसी भी कम्पनी के लेनदारों को व्यापक रूप से वित्तीय और व्यापार करने वाले लेनदारों की दो श्रेणियों में विभाजित करती है । यह संहिता लेनदारों के इन तीन वर्गीकरण, जो 2016 की संहिता के पूर्व विद्यमान थे, के अतिरिक्त वित्तीय और व्यापार करने वाले लेनदारों को भी रेखांकित करने की ईप्सा करती है । वित्तीय लेनदार की परिभाषा धारा 5(7) में दी गई है जिसको 2016 की संहिता की धारा 5(8) और 3(10) के साथ पढ़ा जाना चाहिए । किसी वित्तीय लेनदार का अर्थ आवश्यक रूप से ऐसे लेनदार से है जिसका दावा परिसमापन वाले संव्यवहार से उत्पन्न होता है जिसको उस लेनदार द्वारा कम्पनी के साथ किया गया है । वित्तीय लेनदार या तो सुरक्षित लेनदार हो सकता है या असुरक्षित लेनदार । इसके विपरीत व्यापार करने वाला लेनदार एक ऐसा लेनदार है जिसका दावा कारबार के सामान्य संव्यवहार, जो वह लेनदार विधिक अस्तित्व के साथ करता है, में उत्पन्न होता है । इसमें कम्पनी के किसी कर्मचारी या कर्मकार द्वारा मजदूरी या वेतन के रूप में प्राप्य राशि भी सम्मिलित है । इसमें किसी कानून के अधिरोपण के मतालम्बन में प्राप्य राशि के कारण किसी कानूनी प्राधिकारी का दावा भी सम्मिलित है । किसी कम्पनी के लेनदार का सुरक्षित,

असुरक्षित और कानूनी लेनदार के रूप में वर्गीकरण को 2016 की संहिता के अधीन कम्पनी की दिवाला कार्यवाही को आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ कम्पनी के वित्तीय या व्यापार करने वाले लेनदार द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है । जब कम्पनी का कोई लेनदार 2016 की संहिता के अधीन कम्पनी की दिवाला कार्यवाही में अन्तर्वलित हो जाता है, तो वह उस कम्पनी के सुरक्षित या असुरक्षित या कानूनी लेनदार की हैसियत, जैसा भी मामला हो, नहीं खोता । फिर भी 2016 की संहिता के अन्तर्गत दिवाला कार्यवाहियों में किसी लेनदार को उस कम्पनी की दिवाला कार्यवाही के प्रयोजनार्थ वित्तीय या व्यापार करने वाले लेनदार के रूप में भी वर्गीकृत किया जाता है । जैसा कि उल्लेख ऊपर किया गया है, 2016 की संहिता कम्पनी के लेनदारों को व्यापक रूप से दो श्रेणियों में वर्गीकृत करती है । सुरक्षित, असुरक्षित और कानूनी लेनदार के मध्य अन्तर को बिल्कुल ही अनावश्यक नहीं किया गया है । यह संकल्पनाएं दिवाला कार्यवाहियों के एक विशिष्ट प्रक्रम पर लागू होती हैं । 2016 की संहिता किसी लेनदार को सुरक्षित या असुरक्षित या कानूनी लेनदार के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए लेनदार के महत्व को वित्तीय या व्यापार करने वाला लेनदार होने के कारण कम्पनी की दिवाला कार्यवाही के विनिर्दिष्ट प्रक्रम पर अन्तरित करती है । समान रूप से अवस्थित व्यक्तियों के मध्य वर्गीकरण तभी अनुज्ञेय होगा यदि वर्गीकरण युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित हो । यदि वर्गीकरण युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित है तो वह समानता के सिद्धांत का अतिक्रमण नहीं करता । इसके परिणामस्वरूप, कम्पनी के लेनदारों का वर्गीकरण किया जा सकता है, परन्तु यह तब जबकि वह वर्गीकरण युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित हो । वित्तीय और व्यापार करने वाले लेनदारों को 2016 की संहिता में परिभाषित किया गया है । किसी वित्तीय और व्यापार करने वाले लेनदार की परिभाषाएं, जैसी कि 2016 की संहिता में समाविष्ट हैं, के बाबत कहा जा सकता है कि वे निश्चितता और यथा तथ्य पर आधारित हैं । कम्पनी के लेनदारों के मध्य 2016 की संहिता द्वारा किया गया वर्गीकरण युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित है । कम्पनी के लेनदारों के संबंध में 2016 की संहिता द्वारा रेखांकित वैशिष्ट्य संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण नहीं करता । कम-से-कम इस न्यायालय के समक्ष तो किसी पक्ष द्वारा यह दलील नहीं दी गई है । जो दलील दी गई है, वह यह है कि दो लेनदारों के मध्य विभेदीकरण इस प्रकार का है कि दोनों में से एक वर्गीकृत लेनदार अर्थात्

वित्तीय लेनदार को व्यापार करने वाले लेनदार के ऊपर वरीयता (श्रेष्ठता) प्राप्त है । वित्तीय लेनदार के साथ किया जाने वाला व्यवहार व्यापार करने वाले लेनदार से किए जाने वाले व्यवहार से उच्चतर स्तर का है या नहीं और वित्तीय लेनदार को उच्चतर या श्रेष्ठ अधिकार प्रदान करने वाला है या नहीं और यदि ऐसा है तो क्या ऐसा किया जाना उचित है या क्या इससे संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण होता है, पर विचार किया जाना अपेक्षित है । 2016 की संहिता के प्रभाव में आने के पूर्व दिवाला प्रक्रिया विधिक अस्तित्वों और नैसर्गिक व्यक्तियों, दोनों के बाबत दिवाला के विवाद्यक पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ अपर्याप्त थी । दिवाला और शोधन अक्षमता समाधान के लिए विद्यमान अवसंरचना निष्प्रभावी थी और उसमें अनुचित रूप से विलम्ब कारित होता था । कुछ समितियों और आयोगों ने दिवाला और शोधन अक्षमता विधियों को एकीकृत किए जाने के लिए सिफारिशें की थीं । शोधन अक्षमता विधि सुधार समिति ने दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के लिए अपनी सिफारिश दी थी । कम्पनी के दिवाला समाधान के लिए लेनदारों की समिति के गठन के विवाद्यक पर शोधन अक्षमता समिति द्वारा विचार किया गया था जिसकी अध्यक्षता डा. टी. के. विश्वनाथन ने की थी । यह रिपोर्ट वित्तीय लेनदारों द्वारा लेनदारों की समिति के गठन और व्यापार करने वाले लेनदारों के मुकाबले में वित्तीय लेनदारों को दिए जाने वाले अधिमान की युक्तिसंगतता के बारे में बताती है । किसी व्यापार करने वाले लेनदार को लेनदारों की समिति में आने से पूर्णतया बाहर नहीं किया गया है । व्यापार करने वाले लेनदार को उस स्थिति में मताधिकार का प्रयोग करने का अधिकार नहीं होगा यदि वह मताधिकार लेनदारों की समिति में किया जाता है । शोधन अक्षमता समिति ने किसी कम्पनी के संबंध में लम्बित दिवाला कार्यवाही में वित्तीय लेनदारों के साथ व्यापार करने वाले लेनदारों के मुकाबले विशिष्ट तरीके से बर्ताव किए जाने का एक तर्काधार प्रदान किया है । यह तर्काधार किसी कम्पनी के दिवाला विवाद्यक के त्वरित समाधान के लिए लिया गया सत्याभाषी विचार है । न्यायालयों से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे अधिसंभाव्य रूप से दुरुपयोग या अपरिपक्वता या असमानता, जो इस विधान में अंतःस्थापित समझी जाती है, के आधार पर किसी विधान का न्यायनिर्णयन करें । 2016 की संहिता के अन्तर्गत किसी कम्पनी की दिवाला प्रक्रिया में वित्तीय लेनदार के साथ विशिष्ट रूप से व्यवहार किए जाने के तर्काधार के बाबत यह नहीं कहा जा सकता कि वह संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण

करता है । अभिलेख पर ऐसा कुछ भी उपस्थित नहीं है जिसके आधार पर 2016 की संहिता के अन्तर्गत किसी कार्यवाही में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के भंग के आधार पर भिन्न मत व्यक्त किया जा सके । इन परिस्थितियों में 2017 की रिट याचिका संख्या 672 असफल होती है । इसको खारिज किया जाता है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा । (पैरा 12, 13, 14, 15, 16, 17, 19 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	2017 खंड 203 कम्पनी केसेज पृष्ठ 442 : **श्री मैटलिक्स लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और एक अन्य ;**	4
[2017]	(2017) एस. सी. सी. आनलाइन (एस. सी.) पृष्ठ 1025 : **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **आई. सी. आई. सी. आई. बैंक और एक अन्य ;**	4
[2017]	2017 एस. सी. सी. आनलाइन (एस. सी.) पृष्ठ 1154 : **मोबिलोक्स इनोवेशन्स प्रा. लिमिटेड** बनाम **किरुसा सोफ्टवेयर प्रा. लिमिटेड ;**	4
[2016]	(2016) 2 एस. सी. सी. 226 : **डायरेक्टर जनरल आफ फारेन ट्रेड** बनाम **कनक एक्सपोर्ट्स और अन्य ;**	10
[2012]	(2012) 6 एस. सी. सी. 312 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **राकेश कोहली और एक अन्य ;**	10
[2009]	(2009) 12 एस. सी. सी. 491 : **सतीश कुमार बत्तरा** बनाम **हरियाणा राज्य ;**	10
[2008]	(2008) 4 एस. सी. सी. 720 : **आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य** बनाम **पी. लक्ष्मीदेवी ;**	6
[2000]	(2000) 5 एस. सी. सी. 471 : **भावेश डी. पारिख और अन्य** बनाम **भारत संघ ;**	6

[1981] (1981) 4 एस. सी. सी. 675 :
आर. के. गर्ग बनाम भारत संघ । 10

आरंभिक रिट (सिविल) अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका सं. 672.

भारत का संविधान,1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से	सर्वश्री एस. एन. मुखर्जी (वरिष्ठ अधिवक्ता), रतनानको बनर्जी (वरिष्ठ अधिवक्ता), शौनक मित्रा, ए. चौधरी, सम्भिक चौधरी और डी. मजूमदार
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री कौशिक चन्द्रा (अपर महा सालिसीटर) और जतिन्द्र सिंह ढट्ट

न्यायमूर्ति देबांसू बसक – याचियों ने 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7, 8 और 9 की विद्यमानता को चुनौती दी है ।

2. याचियों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता ने निवेदन किया कि द्वितीय प्रत्यर्थी एक निगमित देनदार है जिसके संबंध में 2016 की संहिता के अन्तर्गत कोलकाता के राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ कार्यवाही लम्बित हैं । उनके अनुसार 2016 की संहिता वित्तीय लेनदार और निगमित देनदार के साथ व्यापार करने वाले लेनदार के मध्य निगमित देनदार के संबंध में विभेद करती है जिसका कोई युक्तिसंगत और बोधगम्य आधार नहीं है । इन दोनों श्रेणियों के लेनदारों के मध्य विभेद युक्तिसंगत और बोधगम्य आधार न होने के कारण, 2016 की संहिता की धारा 7, 8 और 9 के उपबंध समाप्त कर दिए जाने चाहिए । उन्होंने निवेदन किया कि वित्तीय लेनदार को अनुचित रूप से अधिमान प्रदान किया गया है । वित्तीय लेनदार को दिवाला कार्यवाहियों के संबंध में किसी निगमित देनदार की लेनदारों की समिति में होने का अधिकार प्राप्त है । यद्यपि यह संभव है कि निगमित देनदार के साथ व्यापार करने वाले लेनदार को वित्तीय लेनदार के मुकाबले दावा करने के अधिक अधिकार प्राप्त हो, फिर भी उसको लेनदारों की समिति में अपनी बात रखने का कोई अधिकार नहीं हैं । एक ऐसी भी स्थिति हो सकती है जिसमें यह संभव हो कि निगमित देनदार का केवल एक ही वित्तीय लेनदार हो । ऐसा वित्तीय लेनदार निगमित देनदार के साथ व्यापार करने वाले लेनदार को सम्मिलित करते हुए उस निगमित देनदार के लेनदारों की अन्य श्रेणियों द्वारा बिना किसी भागीदारी के लेनदारों की

समिति गठित करेगा, यद्यपि निगमित देनदार के साथ व्यापार करने वाला वह लेनदार किसी विनिर्दिष्ट स्थिति में वित्तीय लेनदार से अधिक दावा रख सकता है और यह भी संभव है कि निगमित देनदार के साथ व्यापार करने वाले लेनदारों की संख्या वित्तीय लेनदारों से अधिक हो । एक ही वित्तीय लेनदार के संबंध में दोनों श्रेणियों के लेनदारों के मध्य इस प्रकार का विभेद अनुचित, पक्षपातपूर्ण, अव्यवहारिक और असंगत है और इसका किसी भी न्यायालय द्वारा अनुमोदन नहीं किया जा सकता । वे विभेद, जिनको किसी निगमित देनदार के लिए वित्तीय संव्यवहार और व्यापार करने वाले संव्यवहारों से उद्‌भूत लेनदारों के संबंध में किए जाने की ईप्सा 2016 की संहिता द्वारा की गई है, को याचियों के विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा रेखांकित किया गया है । उन्होंने 2016 की संहिता की धाराओं 3(6), (10), (11), (12), धारा (6), (7), (8), (20), (21), धारा 6, धारा 7, धारा 8 और धारा 9 को निर्दिष्ट किया है ।

3. याचियों के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने निवेदन किया 2016 की संहिता न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को किसी वित्तीय लेनदार द्वारा दर्ज कराए गए दावे की विधिमान्यता और पर्याप्तता पर विचार करने के लिए सशक्त नहीं करती जबकि व्यापार करने वाले लेनदार के संबंध में गहराईपूर्वक और उत्तम संवीक्षा किया जाना ईप्सित है । याचियों के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि दोनों ही परिस्थितियों में जांच की परिधि, जैसी कि 2016 की संहिता के अधीन अनुध्यात है या कम-से-कम जैसा कि राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के पीठासीन अधिकारी प्रवर्तित करने की ईप्सा करते है, ऐसे आत्यांतिक प्रांचलों के अन्तर्गत हैं, जहां तक निगमित देनदार का संबंध है, न्याय प्रभावित हो जाता है । उन्होंने निवेदन किया कि निगमित देनदार के पास ऐसा कोई मंच नहीं है जिस पर वह अपने लेनदारों के साथ खड़ा हो सके और उस दावे की विधिमान्यता, पर्याप्तता, वैधता और प्रमात्रा को चुनौती दे सके जो उसके विरुद्ध लेनदारों की किसी भी श्रेणी, चाहे वह वित्तीय श्रेणी का लेनदार हो या व्यापार करने वाले की श्रेणी का लेनदार हो, द्वारा किया गया हो । तथापि, व्यापार करने वाले लेनदार के मामले में संहिता निगमित देनदार के लिए कदाचित बेहतर स्थिति की संकल्पना करती है यद्यपि ऐसी तथाकथित बेहतर स्थिति भी अपर्याप्त है । उनके अनुसार, 2016 की संहिता की धारा 7, जैसी कि वह वर्तमान में है, किसी निगमित देनदार को मुजरा करने या खंडन दावा फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान नहीं करती, जो वित्तीय लेनदार के विरुद्ध विधिमान्य प्रतिरक्षा

है । निगमित देनदार के पास यह प्रतिविरोध करने का कोई मंच नहीं है कि जहां तक वित्तीय लेनदार के दायित्व से इनकार किए जाने का प्रश्न है, उसका आधार विधिमान्य है । उन्होंने ऐसे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जहां 2016 की संहिता में कमी परिलक्षित होती है । उन्होंने निवेदन किया कि 2016 की संहिता की धारा 231 और 238 के कारणवश निगमित देनदार और वास्तव में निगमित देनदार से संबंधित या संबद्ध कोई भी पणधारी 2016 की संहिता के अधीन किसी अधिकरण के समक्ष लम्बित किसी कार्यवाही के विरुद्ध या आदेश अभिप्राप्त करने के प्रयोजन से किसी अन्य फोरम की शरण में नहीं जा सकता ।

4. याचियों के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने निवेदन किया कि वह विभेद जिसको 2016 की संहिता द्वारा वित्तीय लेनदार और व्यापार करने वाले लेनदार के मध्य किए जाने की ईप्सा की गई है, बिना किसी आधार के है । उनके अनुसार किसी भी विनिर्दिष्ट मामले में व्यापार करने वाले लेनदार का दावा और उसके धन के मूल्य की गुणवत्ता और मूल्य वित्तीय लेनदार के धन की गुणवत्ता और मूल्य के मुकाबले में समान होंगे । वित्तीय लेनदार को भी उन्हीं कठिनाईयों का सामना करना चाहिए जिन कठिनाईयों का सामना व्यापार करने वाले लेनदार द्वारा किया जाता है । इसलिए, 2016 की संहिता द्वारा रेखांकित अन्तर किसी बोधगम्य श्रेणी पर आधारित नहीं है । 2016 की संहिता के कठोर परिणाम लेनदारों के मध्य असमानता को बढ़ावा देने वाले हैं । उन्होंने अपनी दलीलों के समर्थन में **श्री मैटलिक्स लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1], **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **आई. सी. आई. सी. आई. बैंक और एक अन्य**[2], **मोबिलोक्स इनोवेशन्स प्रा. लिमिटेड** बनाम **किरुसा सोफ्टवेयर प्रा. लिमिटेड**[3] वाले मामलों का अवलंब लिया । उन्होंने निवेदन किया कि किसी दिवाला याचिका को सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने के पहले का प्रक्रम तब आरम्भ होता है जब राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण द्वारा दिवाला आवेदन सुनवाई के लिए ग्रहण कर लिया जाता है । उन्होंने अपनी दलीलों के समर्थन में 2016 की संहिता की धारा 21, 30, 31 और 53 और साथ ही 2016 के भारत का दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड (निगमित व्यक्तियों के लिए दिवाला समाधान प्रक्रिया) विनियम 37 को निर्दिष्ट किया ।

---

[1] 2017 खंड 203 कम्पनी केसेज पृष्ठ 442.

[2] (2017) एस. सी. सी. आनलाइन (एस. सी.) पृष्ठ 1025.

[3] 2017 एस. सी. सी. आनलाइन (एस. सी.) पृष्ठ 1154.

5. उनके अनुसार वित्तीय और व्यापार करने वाले लेनदारों के संबंध में 2016 की संहिता में रेखांकित विभेद के संबंध में अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह बिना किसी बोधगम्य आधार के है और उसको समाप्त कर दिया जाना चाहिए ।

6. इस याचिका का विरोध प्रत्यर्थियों द्वारा किया गया । द्वितीय प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता ने निवेदन किया कि किसी विधिक अस्तित्व और साथ ही किसी नैसर्गिक व्यक्ति के संबंध में दिवाला और शोधन अक्षमता कार्यवाहियों की संकल्पना में जबरदस्त उलटफेर हुआ है उनके अनुसार पहले प्रतिभूत लेनदार को दिवाला कार्यवाहियों में अधिमान मिला करता था । कर्मकारों के दावों को भी कानूनी देयों के रूप में अधिमान मिला करता था । 2016 की संहिता के अन्तर्गत लेनदारों को मिलने वाली पूर्विकता में भी जबरदस्त उलटफेर हुआ है । (विधान-मंडल द्वारा) यह महसूस किया गया कि 1956 का कम्पनी अधिनियम, 1985 का रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1920 का प्रान्तीय दिवाला अधिनियम और दिवाला से संबंधित अन्य विधियों को वह सफलता नहीं मिल पाई जो अपेक्षित थीं चूंकि प्रतिभूत लेनदारों, कानूनी लेनदारों और कर्मकारों को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया । उन्होंने निवेदन किया कि न्यायालय को विधान-मंडल, जो विधान को पारित करने के लिए सशक्त है, द्वारा पारित किसी भी अधिनियम के अस्तित्व को समाप्त करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए, यदि वह अधिनियम राजकोषीय या आर्थिक क्षेत्र से संबंधित है । वर्तमान मामले में आक्षेपित विधान को पारित करने में संसद् की सक्षमता को चुनौती नहीं दी गई है । आक्षेपित विधान आर्थिक क्षेत्र से संबंधित है । न्यायालयों ने इस बात को मान्यता प्रदान की है कि राजकोषीय या कर संबंधी कानूनों को अन्य कानूनों के मुकाबले अधिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है । उन्होंने अपनी दलीलों के समर्थन में **भावेश डी. पारिख और अन्य** बनाम **भारत संघ**[1] और **आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य** बनाम **पी. लक्ष्मीदेवी**[2] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

7. द्वितीय प्रत्यर्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने उस पृष्ठभूमि का आश्रय लिया जिसमें 2016 की संहिता को अधिनियमित किया गया । उन्होंने **डा. टी. के. विश्वनाथन की अध्यक्षता वाली शोधन अक्षमता समिति** की रिपोर्ट

---

[1] (2000) 5 एस. सी. सी. 471.

[2] (2008) 4 एस. सी. सी. 720.

को निर्दिष्ट किया । उन्होंने उक्त रिपोर्ट में समाविष्ट कुछ निष्कर्षों का आश्रय लिया । उन्होंने हमारे समक्ष उक्त रिपोर्ट के कुछ लेखांशों को प्रस्तुत किया जिनमें समिति ने वित्तीय लेनदार और व्यापार करने वाले लेनदार के साथ किए जाने वाले बर्ताव में विभेद पर विचार किया है । उन्होंने निवेदन किया कि समिति ने उक्त रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकाला कि वित्तीय लेनदार के मुकाबले व्यापार करने वाले लेनदार के कर्ज की प्रकृति में अन्तर है । अनुभव से यह दर्शित होता है कि वित्तीय लेनदार का दावा अधिकांश मामलों में बिना किसी प्रतिरक्षा के होता है जबकि व्यापार करने वाले लेनदार के दावे में अनेक दृष्टिकोण होते हैं जिनका न्यायनिर्णयन किया जाना अपेक्षित होता है । व्यापार करने वाले लेनदार का दावा विवादित किया जा सकता है । उन्होंने **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट किया और निवेदन किया कि उच्चतम न्यायालय ने 2016 की संहिता पर विचार किया है और उन्होंने किसी वित्तीय लेनदार और व्यापार करने वाले लेनदार के मध्य अन्तर किए जाने में कुछ भी गलत नहीं पाया । उन्होंने संहिता के विभिन्न उपबंधों को निर्दिष्ट किया और निवेदन किया कि 2016 की संहिता न्यायनिर्णायक प्राधिकारी से यह अपेक्षा करती है कि वह पक्षों द्वारा उठाए गए विधिमान्य विवादों पर विचार करे । **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में इस बात को मान्यता प्रदान की गई है कि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी द्वारा किसी भी विधिमान्य विवाद पर संहिता में उल्लिखित तरीके में विचार किया चाहिए ।

8. जहां तक लेनदारों की समिति में भागीदारी का संबंध है द्वितीय प्रत्यर्थी के विद्वान् अधिवक्ता के अनुसार 2016 की संहिता व्यापार करने वाले लेनदार के अधिकार को लेनदारों की समिति की बैठकों में बिना किसी मताधिकार के भाग लेने के अधिकार को मान्यता प्रदान करती है, यदि उस व्यापार करने वाले लेनदार का दावा निगमित देनदार के कुल दायित्वों के 10 प्रतिशत से अधिक है । उनके अनुसार 2016 की संहिता के अन्तर्गत विहित 10 प्रतिशत की अवसीमा हाशिए पर पड़े हुए लेनदारों को पृथक् किए जाने की ईप्सा करती है । यदि हाशिए पर पड़े हुए लेनदारों को बोर्ड (लेनदारों की समिति) में लिया जाता है तो इस बात की प्रत्येक संभाव्यता है कि वे दिवाला स्थिति के शीघ्र समाधान में कठिनाइयां उत्पन्न करेंगे । 2016 की संहिता विधिक अस्तित्व (कर्जदार निगमित निकाय) को यथासंभव और यथाशीघ्र पुनर्जीवित करने और साथ ही उसके दिवाला

समाधान का प्रयास करने के लिए ईप्सित हैं । 2016 की संहिता कुछ विनिर्दिष्ट बातों के लिए समय-सीमा विहित करती है । यद्यपि 2016 की संहिता के अन्तर्गत विहित समय-सीमा को निर्देशात्मक अभिनिर्धारित किया जा सकता है, न कि आज्ञापक, फिर भी न्यायनिर्णायक प्राधिकारी या दिवाला वृत्तिक या किसी अन्य पदनामित प्राधिकारी द्वारा दिवाला समाधान की किसी योजना को यथाशीघ्र अंतिम रूप दिए जाने की अपेक्षा के कारण 2016 की संहिता किसी विधिक अस्तित्व के दिवाला विवाद्यक को यथाशीघ्र संबोधित किए जाने की ईप्सा करती है ताकि वह विधिक अस्तित्व बचा रहे । उस स्थिति में जब दिवाला विवाद्यक का समाधान नहीं किया जा सकता, जैसा कि 2016 की संहिता में अनुध्यात है, तो वह विधिक अस्तित्व परिसमापन में भेज दिया जाता है । यह 1956 के कम्पनी अधिनियम के समान ही है । 1956 के कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत किसी कम्पनी को परिसमापन में तब भेजा जाएगा यदि प्रस्तुत की गई परिसमापन याचिका को सुनवाई के लिए ग्रहण कर लिया जाता है । द्वितीय प्रत्यर्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने 2016 की संहिता की धारा 30 और 2016 के भारत का दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड (निगमित व्यक्तियों के लिए दिवाला समाधान प्रक्रिया) विनियम के विनियम 38 का अवलंब यह दलील देने के प्रयोजनार्थ लिया है कि व्यापार करने वाले लेनदारों का हित पूर्णतः संरक्षित है ।

9. जहां तक नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का संबंध है, द्वितीय प्रत्यर्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने निवेदन किया कि 2016 की संहिता 2016 के दिवाला और शोधन अक्षमता (न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को आवेदन) नियम के अधीन निगमित देनदार को नियम 4(3) के अधीन नोटिस दिए जाने के लिए अनुध्यात करती है । इसलिए, निगमित देनदार को दिवाला याचिका के प्रस्तुतिकरण के पूर्व भी ऋण के संदाय में चूक किए जाने के बाबत पर्याप्त नोटिस दिया जाता है ताकि निगमित देनदार को दिवाला स्थिति के समाधान के लिए अवसर मिल सके । 2016 की संहिता के अन्तर्गत किसी विधिक अस्तित्व की दिवाला स्थिति के यथाशीघ्र समाधान के लिए पर्याप्त रूप से जोर दिया गया है । इसलिए, निगमित देनदार को उसके विरुद्ध राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष दिवाला याचिका प्रस्तुत किए जाने के पूर्व भी दिवाला विवाद्यक के समाधान के लिए अवसर प्राप्त है । 2016 की संहिता की धारा 7 या 9 के अधीन निगमित देनदार के विरुद्ध दिवाला याचिका प्रस्तुत किए जाने की स्थिति में, जैसी कि स्थिति अपेक्षा

करे, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को यह अधिकार होता है कि वह प्रस्तुतिकरण की तारीख से 14 दिनों के भीतर उस याचिका को सुनवाई के लिए ग्रहण करे या अस्वीकृत करे । उपरोक्त में से कोई भी धारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उपयोजन को निरावृत्त नहीं करती । किसी भी कानून में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को पढ़ा जा सकता है जब तक कि उनका पढ़ा जाना अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित न कर दिया जाए । इस सिद्धांत के आधार पर यह दलील नहीं दी जा सकती कि धारा 7 और 9 नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पालन की अपेक्षा से इनकार करते हैं । उन्होंने **श्री मैटलिक्स लिमिटेड और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब अपनी दलीलों के समर्थन में लिया । द्वितीय प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया है कि पूर्ववर्ती कानूनों की ही भांति किसी कम्पनी के प्रवर्तकों और अंशधारकों द्वारा उस कम्पनी को नियंत्रित और प्रबंधित किए जाने के "श्रेष्ठ अधिकार" को अब उच्च पीठिका पर स्थापित अधिकार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । ऐसे अधिकार को तभी तक मान्यता प्रदान की जा सकती है जब तक कि विधिक अस्तित्व अपने दायित्वों का निर्वहन करने की स्थिति में हो । जैसे ही दिवाला का तत्व कम्पनी के कार्यों में रेंगता है, उस कम्पनी को प्रबंधित करने के अंशधारकों के अधिकार उस समय तक के लिए स्थगित हो जाते हैं, जब तक कि दिवाला के विवाद्यक का हल ढूंढ नहीं लिया जाता । जैसे ही दिवाला के विवाद्यक का हल ढूंढ लिया जाता है, कम्पनी को प्रबंधित करने के अंशधारकों के अधिकार पुनर्जीवित हो जाते हैं । 2016 की संहिता कम्पनी के अंशधारकों को यह संदेश देने की ईप्सा करती है कि जब तक कम्पनी अपने दायित्वों का निर्वहन कर रही है, अंशधारकों को उसको प्रबंधित करने का अधिकार होगा । अंशधारकों का उस कम्पनी को प्रबंधित करने का अधिकार तब स्थगित हो जाएगा जब उस कम्पनी में दिवाला का विवाद्यक अन्तर्वलित हो जाता है और तब तक स्थगित रहेगा जब तक कि दिवाला की समस्या का हल ढूंढ नहीं लिया जाता । 2016 की संहिता दिवाला विवाद्यक के यथाशीघ्र निराकरण के लिए समय-सीमा उपबंधित करती है । उन्होंने अपनी दलीलों के समर्थन में **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले के विभिन्न लेखांशों को निर्दिष्ट किया । उन्होंने दलील दी कि याचियों को कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जाना चाहिए ।

10. भारत संघ की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर महासालिसीटर ने निवेदन किया कि 2016 की संहिता को अधिकारातीत के रूप में समाप्त

नहीं किया जा सकता, जैसी कि दलील याचियों की ओर से दी गई है । उन्होंने **डायरेक्टर जनरल आफ फारेन ट्रेड** बनाम **कनक एक्सपोर्ट्स और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया और निवेदन किया कि आर्थिक मामलों में भी अनुसंधान अनुज्ञेय हैं । 2016 की संहिता ने विधिक अस्तित्वों और नैसर्गिक व्यक्तियों के दिवाला समाधान के संबंध में नए विचारों और दिशा सुधार को पुरःस्थापित किया है । विधान-मंडल को इस प्रकार के अनुसंधान करने का अधिकार प्राप्त है । न्यायालयों को आर्थिक मामलों के संबंध में अधिनियमित विधानों को समाप्त करने में शिथिलता बरतनी चाहिए । उन्होंने **आर. के. गर्ग** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि किसी विधान के दुरुपयोग की संभाव्यता उसको संविधान के अधिकारातीत के रूप में समाप्त किए जाने का कोई आधार नहीं है । विद्वान् अपर महासालिसीटर ने **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **राकेश कोहली और एक अन्य**[3] वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि जब तक कि न्यायालय को यह दर्शित नहीं किया जाता कि किसी कानून के किसी उपबंध द्वारा संविधान का सुस्पष्ट रूप से अतिक्रमण किया गया है, न्यायालय को मध्यक्षेप नहीं करना चाहिए । न्यायालय को इस बात की उपधारणा करनी चाहिए कि कानून संविधानसम्मत् है । विद्वान् अपर महासालिसीटर ने **सतीश कुमार बत्तरा** बनाम **हरियाणा राज्य**[4] वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि किसी अधिनियमिति का दुरुपयोग उसको अधिकारातीत घोषित किए जाने का कोई आधार नहीं है । परिणामस्वरूप उन्होंने निवेदन किया कि याची किसी अनुतोष के हकदार नहीं है ।

11. पक्षों ने हमारे विचारार्थ 2016 की संहिता के विभिन्न उपबंधों को निर्दिष्ट किया है जो निम्नलिखित हैं :–

"3. **परिभाषाएं** –

(1) * * * *

(2) * * * *

(3) * * * *

---

[1] (2016) 2 एस. सी. सी. 226.

[2] (1981) 4 एस. सी. सी. 675.

[3] (2012) 6 एस. सी. सी. 312.

[4] (2009) 12 एस. सी. सी. 491.

(4) * * * *

(5) * * * *

(6) "दावा" से –

(क) संदाय का कोई अधिकार, चाहे या किसी निर्णय, नियत, विवादित, अविवादित, विधिक, साम्यापूर्ण, प्रतिभूति या अप्रतिभूति के लिए घटा दिया गया ऐसा अधिकार जिसके अन्तर्गत उधार या अग्रिम भी है ; या

(ख) तत्समय प्रवृत किसी विधि के अधीन संविदा के भंग के लिए उपचार, यदि ऐसा भंग संदाय के किसी अधिकार से उत्पन्न होता है निर्णय, नियत, परिपक्व, अपरिपक्व, विवादित, अविवादित, प्रतिभूति या अप्रतिभूति की कटौती से दिया गया ऐसा अधिकार है या नहीं,

अभिप्रेत है ;

(7) "निगमित व्यक्ति" से कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 के खंड (20) में यथा परिभाषित कोई कंपनी, सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ढ) में यथा परिभाषित कोई सीमित दायित्व भागीदारी या कोई अन्य व्यक्ति, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन सीमित दायित्व के साथ निगमित हैं, किन्तु इसके अंतर्गत कोई वित्तीय सेवाएं प्रदाता नहीं है ।

(8) "निगमित ऋणी" से कोई निगमित व्यक्ति अभिप्रेत है जो व्यक्ति किसी ऋण से ऋणी है ।

(9) "कोर सेवाएं" से –

(क) किसी ऐसे रूप और रीति में वित्तीय जानकारी को इलैक्ट्रोनिक प्ररूप में भेजने को स्वीकार करना, जो विहित की जाए ;

(ख) वित्तीय जानकारी का सुरक्षित और शुद्ध अभिलिखित करना ;

(ग) किसी व्यक्ति द्वारा भेजी गई वित्तीय जानकारी को अधिप्रमाणित और सत्यापन करना ;

(घ) व्यक्तियों को उपयोगी जानकारी के साथ भंडारित जानकारी तक पहुंच उपलब्ध कराना जो विनिर्दिष्ट किया जाए,

के लिए उपयोगी जानकारी द्वारा दी जाने वाली सेवाएं अभिप्रेत हैं ;

(10) "लेनदार" से कोई व्यक्ति जो किसी ऋण से ऋणी अभिप्रेत है जो किसी व्यक्ति को शोध्य और जिसके अंतर्गत कोई वित्तीय ऋण तथा प्रचालन ऋणी भी है ।

(11) "ऋण" से किसी दावे के संबंध में कोई दायित्व या बाध्यता अभिप्रेत है और किसी शंका को दूर करने के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि ऋण के अंतर्गत कोई वित्तीय प्रचालन ऋणी भी है ;

(12) "व्यतिक्रम" से किसी ऋण का तब असंदाय अभिप्रेत है, जब ऋण की संपूर्ण रकम या कोई भाग या किस्त देय और संदेय हो जाती है तथा उसका, यथास्थिति, ऋणी या निगमित ऋणी द्वारा पुनर्संदाय नहीं किया जाता है .... ।

5. **परिभाषाएं** – इस भाग में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हों, –

(1) * * * * *

(2) * * * * *

(3) * * * * *

(4) * * * * *

(5) * * * * *

(6) "विवाद" से, (क) किसी ऋण की रकम की विद्यमानत –

(ख) किसी माल या सेवा की क्वालिटी ; या

(ग) किसी अभ्यावेदन या वारंटी का भंग के संबंध में कोई वाद या माध्यस्थम् अभिप्रेत है ;

(7) "वित्तीय लेनदार" से किसी व्यक्ति को, जिसे वित्तीय ऋण देय है, और जिसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति जो किसी ऋण को विधिक

रूप से समनुदेशित या अंतरित कर सकता है ;

(8) "वित्तीय ऋण" से हित के साथ कोई ऋण, यदि कोई हो, जो धन की समय मूल्य के प्रतिफल के विरुद्ध संवितरित कोई ऋण अभिप्रेत है और जिसके अन्तर्गत –

(क) ब्याज के संदाय के लिए धन उधार देना ;

(ख) कोई स्वीकार्य प्रत्यय सुविधा के अधीन स्वीकार्य द्वारा ली गई कोई रकम या उसके अक्रियान्वयन के समतुल्य ;

(ग) किसी नोट क्रय सुविधा के अनुसरण में उत्पन्न कोई रकम या बांड, नोट, डिबेंचर, उधार स्टाक या कोई समतुल्य लिखत द्वारा उत्पन्न कोई रकम ;

(घ) किसी पट्टे या अवक्रय संविदा के संबंध में किसी दायित्व की रकम जो भारतीय लेखा मानक या कोई अन्य लेखा मानकों के अधीन में किसी वित्तीय या पूंजी पट्टे के रूप में समझी गई है ;

(ङ) गैर अवलंब आधार पर किसी प्राप्त करने योग्य विक्रय की गई से भिन्न प्राप्त करने योग्य बिक्री की गई, छूट ली गई ;

(च) किसी अन्य अंतरण के अधीन उत्पन्न कोई रकम, जिसके अंतर्गत कोई अग्रिम विक्रय या क्रय करार ली गई है जो किसी उधार लेने का वाणिज्यिक प्रभाव रखता है ;

(छ) किसी दर या मूल्य में उतार चढ़ाव के विरुद्ध या उससे लाभ के संरक्षण के संबंध में कोई व्युत्पन्न संव्यवहार करना और ऐसे संव्यवहार की मूल्य नीति की संगणना करने के लिए केवल लेखों में बाजारू मूल्य लिया जाएगा ;

(ज) किसी प्रत्याभूति, क्षतिपूर्ति, बंधपत्र, व्यवस्था या प्रत्यय का दस्तावेजी पत्र या किसी बैंक या वित्तीय संस्था द्वारा जारी कोई अन्य लिखत के संबंध में कोई प्रति क्षतिपूर्ति बाध्यता ;

(झ) इस खंड के उपखंड (क) से (ख) तक निर्दिष्ट किसी मद के लिए किसी प्रत्याभूति या क्षतिपूर्ति के संबंध में किसी दायित्व की रकम या ;

(9) * * * * *

(10) * * * * *

(11) * * * * *

(12) * * * * *

(13) * * * * *

(14) * * * * *

(15) * * * * *

(16) * * * * *

(17) * * * * *

(18) * * * * *

(19) * * * * *

(20) "प्रचालन लेनदार" से कोई व्यक्ति (जिसके अंतर्गत भारत से बाहर निवासी अभिप्रेत है) जो कोई प्रचालन ऋण लेता है और जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति जो ऐसा ऋण विधिक रूप से समनुदेशित करेगा, अभिप्रेत है;

(21) "प्रचालन ऋण" से किसी माल या सेवा या के उपबंध के संबंध में कोई दावा (जिसके अंतर्गत नियोजन भी है) या किसी शोध्य के संदाय के संबंध में कोई ऋण और तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन प्रोद्भूत केन्द्रीय सरकार, किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी को संदेय रकम अभिप्रेत है ; ....

6. **व्यक्ति जो निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकेंगे** – जहां कोई वित्तीय ऋणी, किसी वित्तीय लेनदार का व्यतिक्रम करता है, कोई प्रचालनीय लेनदार या कोई निगमित ऋणी चयन इस अध्याय के अधीन यथा उपबंधित रीति में ऐसे निगमित ऋणी के संबंध में निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकेगा ।

7. **वित्तीय लेनदार द्वारा निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया का प्रारम्भ** – (1) कोई वित्तीय लेनदार स्वयं या किसी अन्य वित्तीय

लेनदार के साथ संयुक्त रूप से न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के समक्ष किसी निगमित ऋणी के विरुद्ध, निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए आवेदन फाइल कर सकेगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजन के लिए, कोई व्यक्तिक्रम, जिसके अन्तर्गत निगमित ऋणी के किसी वित्तीय लेनदार से लिए जाने वाले किसी वित्तीय ऋण के संबंध में कोई व्यतिक्रम भी है किन्तु आवेदक केवल किसी अन्य निगमित ऋणी का कोई वित्तीय लेनदार नहीं होगा ।

(2) वित्तीय लेनदार उपधारा (1) के अधीन ऐसे प्ररूप और रीति में आवेदन कर सकेगा तथा जिसके साथ ऐसी फीस भी होगी, जो विहित की जाएं ।

(3) वित्तीय लेनदार आवेदन के साथ निम्नलिखित देगा –

(क) जानकारी उपयोगिता के साथ अभिलिखित व्यतिक्रम के सबूत या व्यतिक्रमों के ऐसे अन्य अभिलेख, जो विनिर्दिष्ट किए जाएं ;

(ख) किसी अंतरिम समाधान वृत्तिक के रूप में कार्य करने का समाधान वृत्तिक का नाम ; और

(ग) ऐसी अन्य जानकारी जो बोर्ड द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए ।

(4) न्यायनिर्णायक प्राधिकारी उपधारा (2) के अधीन आवेदन की प्राप्ति के चौदह दिन के भीतर या जानकारी उपयोगिता के अभिलेखों उपधारा (3) के अधीन वित्तीय लेनदार के द्वारा अन्य साक्ष्य के अभिलेख देने के आधार पर किसी व्यतिक्रम के विद्यमानतः को सुनिश्चित करेगा ;

(5) जहां न्यायनिर्णायक प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि –

(क) जहां कोई व्यतिक्रम हुआ है और उपधारा (2) के अधीन आवेदन पूर्ण है और प्रस्तावित समाधान वृत्तिक के विरुद्ध कोई अनुशासनिक प्रक्रिया लंबित नहीं है, आदेश द्वारा ऐसे आवेदन को स्वीकार कर सकेगा ;

(ख) जहां कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ है और उपधारा (2) के अधीन आवेदन अपूर्ण है और प्रस्तावित समाधान वृत्तिक के विरुद्ध कोई अनुशासनिक प्रक्रिया लंबित है, आदेश द्वारा ऐसे आवेदन को अस्वीकार कर सकेगा :

परन्तु न्यायनिर्णय प्राधिकारी, उपधारा (5) के खंड (ख) के अधीन अपूर्ण होने के आधार पर आवेदन को निरस्त करने से पूर्व इस संबंध में आवेदक को, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी से ऐसी सूचना की प्राप्ति के तीन दिन के भीतर अपने आवेदन के दोषों को दूर करने के लिए आवेदक को अवसर देना आवश्यक होगा ।

(6) उपधारा (5) के अधीन आवेदन के स्वीकार करने की तारीख से निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ होगी ।

(7) न्यायनिर्णायक प्राधिकारी –

(क) निगमित लेनदार और निगमित ऋणी को उपधारा (5) के खंड (क) के अधीन आदेश ;

(ख) वित्तीय लेनदार को उपधारा (5) के खंड (ख) के अधीन आदेश, यथास्थिति, ऐसे आवेदन के स्वीकार करने या उसके निरस्त करने के दो दिन के भीतर,

संसूचित किया जाएगा ।

8. **प्रचालन लेनदार द्वारा दिवाला समाधान** – (1) कोई प्रचालन लेनदार किसी व्यक्तिक्रम के होने पर कोई असंदत्त प्रचालन ऋण की मांग सूचना या निगमित ऋणी को व्यतिक्रम में अन्तर्वलित रकम के संदाय की मांग के लिए किसी बीजक की प्रति ऐसे प्ररूप में सूचना उपयोगिता के माध्यम से, जहां लागू हो, या रजिस्ट्रीकृत डाक या कोरियर या कोई अन्य इलैक्ट्रोनिक संसाधन, जो विनिर्दिष्ट किया जाए, द्वारा भेजेगा ।

(2) ऐसा निगमित ऋणी मांग सूचना की तारीख के या प्रचालन लेनदार की सूचना, जो उपधारा (1) में वर्णित बीजक की प्रति प्राप्त होने के दस दिन के भीतर –

(क) किसी विवाद, यदि कोई हो, और वाद के लंबित होने के अभिलेख या ऐसे बीजक की प्राप्ति के पूर्व कम से कम साठ

दिन पूर्व फाइल किए गए माध्यस्थम् कार्रवाई या किसी जानकारी उपयोगिता या रजिस्ट्रीकृत डाक या कोरियर या किसी इलैक्ट्रोनिक संसाधन द्वारा ऐसे विवाद के संबंध में सूचना के विद्यमान होने पर ;

(ख) असंदत्त प्रचालन ऋण का पुनर्संदाय –

(i) निगमित ऋणी के बैंक खाते से असंदत्त रकम के इलैक्ट्रोनिक अंतरण की सत्यापित प्रति भेजे जाने द्वारा ; या

(ii) अभिलेख की सत्यापित प्रति जो प्रचालन लेनदार द्वारा निगमित ऋणी द्वारा जारी किसी चैक के भुनाने का सबूत है, भेजने के द्वारा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजन के लिए, "मांग सूचना" से किसी निगमित लेनदार द्वारा प्रचालन ऋणी को प्रचालन ऋण के संदाय की मांग जो व्यतिक्रम से उत्पन्न हुई है, के संबंध में तामील कोई सूचना अभिप्रेत है ।

9. **प्रचालन लेनदार द्वारा निगमन दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए आवेदन** – (1) बीजक या धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन मांग संदाय सूचना के प्रदाय की तारीख से दस दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात्, यदि प्रचालन लेनदार निगमित ऋण से संदाय प्राप्त नहीं करता है या धारा 8 की उपधारा (2) के अधीन विवाद की सूचना प्राप्त नहीं करता है प्रचालन लेनदार किसी निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के समक्ष कोई आवेदन फाइल कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन आवेदन ऐसे प्ररूप और ऐसी रीति में फाइल होगा और उसके साथ ऐसी फीस हो सकेगी जो विहित की जाए ।

(3) प्रचालन लेनदार आवेदन के साथ निम्नलिखित देगा –

(क) निगमित ऋण को प्रचालक लेनदार द्वारा दिया गया मांग संदाय की बीजक या सूचना की प्रति ;

(ख) इस प्रभाव का शपथपत्र कि असंदत्त प्रचालन ऋण के

किसी विवाद से संबंधित निगमित ऋणी द्वारा कोई सूचना नहीं दी गई है ;

(ग) प्रचालन लेनदार के लेखों का अनुरक्षण करने वाले वित्तीय संस्थान से प्रमाणपत्र प्ररूप की प्राप्ति की निगमित ऋणी द्वारा असंदत्त प्रचालन ऋण का संदाय नहीं किया गया है ; और

(घ) ऐसी अन्य जानकारी या जो विनिर्दिष्ट की जाए ।

(4) इस धारा के अधीन निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ करने वाला कोई प्रचालन लेनदार किसी समाधान वृत्तिक का अंतरिम समाधान वृत्तिक के रूप में कार्य करने के लिए प्रस्ताव कर सकेगा ।

(5) न्यायनिर्णयन प्राधिकारी उपधारा (2) के अधीन आवेदन की प्राप्ति के चौदह दिन के भीतर आदेश द्वारा –

(i) आवेदन को स्वीकार करेगा और इस विनिश्चय से प्रचालन लेनदार तथा निगमित ऋणी को संसूचित करेगा, यदि –

(क) उपधारा (2) के अधीन किया गया आवेदन अपूर्ण है ;

(ख) असंदत्त प्रचालन ऋण का पुनः संदाय कर लिया है ;

(ग) निगमित ऋणी को संदाय के लिए बीजक या सूचना लेनदार द्वारा परिदत्त नहीं की गई है ; और

(घ) विवाद की सूचना प्रचालन लेनदार द्वारा प्राप्त हो गई है और सूचना उपयोगिता में विवाद का कोई अभिलेख नहीं है ;

(ङ) उपधारा (4) के अधीन प्रस्तावित किसी समाधान वृत्तिक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही लंबित नहीं है, यदि कोई हो ।

(ii) आवेदन को अस्वीकार करेगा और ऐसे विनिश्चय से प्रचालन लेनदार तथा निगमित ऋणी को संसूचित करेगा यदि –

(क) उपधारा (2) के अधीन किया गया आवेदन पूर्ण

नहीं है ;

(ख) असंदत्त प्रचालन ऋण का पुनर्संदाय किया गया है ;

(ग) लेनदार ने निगमित ऋणी को बीजक या भुगतान के लिए सूचना का परिदान नहीं किया है ; और

(घ) प्रचालन लेनदार ने विवाद की सूचना प्राप्त की है या सूचना उपयोगिता में विवाद का कोई अभिलेख नहीं है ;

(ङ) किसी प्रस्तावित समाधान वृत्तिक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही लंबित नहीं है :

परन्तु न्यायनिर्णयन प्राधिकारी, इस उपधारा के खंड (क) के उपखंड (ii) के अधीन आवेदन को अस्वीकार करने से पूर्व, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी से सूचना प्राप्त करने के तीस दिन के भीतर आवेदक को उसके आवेदन में इस त्रुटि को ठीक करने के लिए अवसर प्रदान करेगा ।

(6) निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया उपधारा (5) के अधीन आवेदन के स्वीकार होने की तारीख से प्रारम्भ होगी ।"

12. 2016 की संहिता विधिक अस्तित्वों और साथ ही नैसर्गिक व्यक्तियों के दिवालापन पर विचार करती है । यद्यपि 2016 की संहिता के कुछ उपबंध तारीख 28 मई, 2016 को प्रभावी हुए थे, फिर भी 2016 की संहिता के उपबंध, जिनको इस याचिका में चुनौती दी गई है, तारीख 1 दिसम्बर, 2016 को प्रभावी हुए । उसके पहले 2013 की कम्पनी विधि और उसके भी पहले 1956 की कम्पनी विधि किसी कम्पनी, जो उक्त अधिनियमों के अधीन निगमित हुई थी या विद्यमान थी, दिवाला से संबंधित विवाद्यकों पर विचार करती थी ।

13. किसी भी कम्पनी में विभिन्न पणधारी होते हैं । किसी भी कम्पनी के लेनदार भी उसके पणधारी होते हैं । 2016 की संहिता द्वारा रेखांकित वित्तीय लेनदारों और व्यापार करने वाले लेनदारों की संकल्पना के पूर्व किसी कम्पनी के लेनदारों को व्यापक रूप से तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता था अर्थात् सुरक्षित लेनदार, असुरक्षित लेनदार और कानूनी लेनदार के रूप में ।

14. 2016 की संहिता किसी भी कम्पनी के लेनदारों को व्यापक रूप से वित्तीय और व्यापार करने वाले लेनदारों की दो श्रेणियों में विभाजित करती है । यह संहिता लेनदारों के इन तीन वर्गीकरण, जो 2016 की संहिता के पूर्व विद्यमान थे, के अतिरिक्त वित्तीय और व्यापार करने वाले लेनदारों को भी रेखांकित करने की ईप्सा करती है । वित्तीय लेनदार की परिभाषा धारा 5(7) में दी गई है जिसको 2016 की संहिता की धारा 5(8) और 3(10) के साथ पढ़ा जाना चाहिए । किसी वित्तीय लेनदार का अर्थ आवश्यक रूप से ऐसे लेनदार से है जिसका दावा परिसमापन वाले संव्यवहार से उत्पन्न होता है जिसको उस लेनदार द्वारा कम्पनी के साथ किया गया है । वित्तीय लेनदार या तो सुरक्षित लेनदार हो सकता है या असुरक्षित लेनदार । इसके विपरीत व्यापार करने वाला लेनदार एक ऐसा लेनदार है जिसका दावा कारबार के सामान्य संव्यवहार, जो वह लेनदार विधिक अस्तित्व के साथ करता है, में उत्पन्न होता है । इसमें कम्पनी के किसी कर्मचारी या कर्मकार द्वारा मजदूरी या वेतन के रूप में प्राप्त राशि भी सम्मिलित है । इसमें किसी कानून के अधिरोपण के मतावलम्बन में प्राप्त राशि के कारण किसी कानूनी प्राधिकारी का दावा भी सम्मिलित है । किसी कम्पनी के लेनदार का सुरक्षित, असुरक्षित और कानूनी लेनदार के रूप में वर्गीकरण को 2016 की संहिता के अधीन कम्पनी की दिवाला कार्यवाही को आरम्भ किए जाने के प्रयोजनार्थ कम्पनी के वित्तीय या व्यापार करने वाले लेनदार द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है । जब कम्पनी का कोई लेनदार 2016 की संहिता के अधीन कम्पनी की दिवाला कार्यवाही में अन्तर्वलित हो जाता है, तो वह उस कम्पनी के सुरक्षित या असुरक्षित या कानूनी लेनदार की हैसियत, जैसा भी मामला हो, नहीं खोता । फिर भी 2016 की संहिता के अन्तर्गत दिवाला कार्यवाहियों में किसी लेनदार को उस कम्पनी की दिवाला कार्यवाही के प्रयोजनार्थ वित्तीय या व्यापार करने वाले लेनदार के रूप में भी वर्गीकृत किया जाता है । जैसा कि उल्लेख ऊपर किया गया है, 2016 की संहिता कम्पनी के लेनदारों को व्यापक रूप से दो श्रेणियों में वर्गीकृत करती है । सुरक्षित, असुरक्षित और कानूनी लेनदार के मध्य अन्तर को बिल्कुल ही अनावश्यक नहीं किया गया है । यह संकल्पनाएं दिवाला कार्यवाहियों के एक विशिष्ट प्रक्रम पर लागू होती हैं । 2016 की संहिता किसी लेनदार को सुरक्षित या असुरक्षित या कानूनी लेनदार के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए लेनदार के महत्व को वित्तीय या व्यापार करने वाला लेनदार होने के कारण कम्पनी की दिवाला कार्यवाही के विनिर्दिष्ट प्रक्रम पर अन्तरित करती है ।

15. समान रूप से अवस्थित व्यक्तियों के मध्य वर्गीकरण तभी अनुज्ञेय होगा यदि वर्गीकरण युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित हो । यदि वर्गीकरण युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित है तो वह समानता के सिद्धांत का अतिक्रमण नहीं करता । इसके परिणामस्वरूप, कम्पनी के लेनदारों का वर्गीकरण किया जा सकता है, परन्तु यह तब जबकि वह वर्गीकरण युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित हो । वित्तीय और व्यापार करने वाले लेनदारों को 2016 की संहिता में परिभाषित किया गया है । किसी वित्तीय और व्यापार करने वाले लेनदार की परिभाषाएं, जैसी कि 2016 की संहिता में समाविष्ट हैं, के बाबत कहा जा सकता है कि वे निश्चितता और यथा तथ्य पर आधारित हैं । कम्पनी के लेनदारों के मध्य 2016 की संहिता द्वारा किया गया वर्गीकरण युक्तिसंगत वैशिष्ट्य पर आधारित है । कम्पनी के लेनदारों के संबंध में 2016 की संहिता द्वारा रेखांकित वैशिष्ट्य संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण नहीं करता । कम-से-कम इस न्यायालय के समक्ष तो किसी पक्ष द्वारा यह दलील नहीं दी गई है । जो दलील दी गई है, वह यह है कि दो लेनदारों के मध्य विभेदीकरण इस प्रकार का है कि दोनों में से एक वर्गीकृत लेनदार अर्थात् वित्तीय लेनदार को व्यापार करने वाले लेनदार के ऊपर वरीयता (श्रेष्ठता) प्राप्त है । वित्तीय लेनदार के साथ किया जाने वाला व्यवहार व्यापार करने वाले लेनदार से किए जाने वाले व्यवहार से उच्चतर स्तर का है या नहीं और वित्तीय लेनदार को उच्चतर या श्रेष्ठ अधिकार प्रदान करने वाला है या नहीं और यदि ऐसा है तो क्या ऐसा किया जाना उचित है या क्या इससे संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण होता है, पर विचार किया जाना अपेक्षित है ।

16. 2016 की संहिता के प्रभाव में आने के पूर्व दिवाला प्रक्रिया विधिक अस्तित्वों और नैसर्गिक व्यक्तियों, दोनों के बाबत दिवाला के विवाद्यक पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ अपर्याप्त थी । दिवाला और शोधन अक्षमता समाधान के लिए विद्यमान अवसंरचना निष्प्रभावी थी और उसमें अनुचित रूप से विलम्ब कारित होता था । कुछ समितियों और आयोगों ने दिवाला और शोधन अक्षमता विधियों को एकीकृत किए जाने के लिए सिफारिशें की थीं । शोधन अक्षमता विधि सुधार समिति ने दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता के लिए अपनी सिफारिश दी थी । कम्पनी के दिवाला समाधान के लिए लेनदारों की समिति के गठन के विवाद्यक पर शोधन अक्षमता समिति द्वारा विचार किया गया था जिसकी अध्यक्षता **डा. टी. के. विश्वनाथन** ने की थी । यह रिपोर्ट वित्तीय लेनदारों द्वारा लेनदारों

की समिति के गठन और व्यापार करने वाले लेनदारों के मुकाबले में वित्तीय लेनदारों को दिए जाने वाले अधिमान की युक्तिसंगतता के बारे में बताती है, जो निम्नलिखित है :–

> "समिति ने इस बात पर विचार-विमर्श किया कि ऋण समिति, जो अंततः अस्तित्व को एक चलते हुए समुत्थान के रूप में जीवित रख सकती है या उसका परिसमापन कर सकती है, में कौन लोग होने चाहिएं । समिति ने इस बात पर विचार-विमर्श किया कि लेनदारों की समिति के सदस्य लेनदार होने चाहिए, जिनमें जीवन क्षमता का अनुगमन करने की क्षमता और साथ ही विचार-विमर्श में विद्यमान दायित्वों के बाबत शर्तों को उपांतरित करने की क्षमता होनी चाहिए । व्यवहारिक रूप से, व्यापार करने वाले लेनदार न तो दिवाला अस्तित्व के संबंध में मामले का निर्णय करने के समर्थ होते हैं और न ही अस्तित्व के लिए भविष्य की उत्तम संभावनाओं के लिए अपने संदायों को टालने का जोखिम लेने के इच्छुक होते हैं । समिति ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रक्रिया के तीव्र गति वाली और प्रभावी होने के लिए संहिता में यह उपबंधित करना होगा कि लेनदारों की समिति को केवल वित्तीय लेनदारों तक समिति होना चाहिए ।"

17. किसी व्यापार करने वाले लेनदार को लेनदारों की समिति में आने से पूर्णतया बाहर नहीं किया गया है । व्यापार करने वाले लेनदार को उस स्थिति में मताधिकार का प्रयोग करने का अधिकार नहीं होगा यदि वह मताधिकार लेनदारों की समिति में किया जाता है ।

18. 2016 की संहिता आर्थिक अधिक्षेत्र में कार्य करने वाली संहिता है । **भावेश डी. पारिख और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले माननीय उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि न्यायालय को किसी विधान के प्रयोग को स्थगित करने में शिथिलता बरतनी चाहिए, विशेष रूप से यदि वह विधान आर्थिक अधिक्षेत्र का विधान है चाहे दलील देने के प्रयोजनार्थ विवाद्यक उठाए गए हों जब तक कि वे उपबंध प्रकट रूप से पक्षपातपूर्ण और असंवैधानिक न हों । **पी. लक्ष्मी देवी** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालयों को विधानों, विशेष रूप से आर्थिक अधिक्षेत्र से संबंधित विधानों पर विचार करते हुए कानून की संवैधानिकता के पक्ष में उपधारणा करनी चाहिए । उक्त मामले के पैरा 73 में जो अभिनिर्धारित किया गया, वह निम्नलिखित है :–

"73. आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों के समस्त विनिश्चय आवश्यक रूप से तदर्थ और प्रयोगात्मक होते हैं । चूंकि आर्थिक मामले अत्यधिक जटिल होते हैं, उनपर अपरिहार्य रूप से विशेष परिस्थितियों के लिए, विशेष प्रकार से विचार किया जाना अपेक्षित होता है । इसलिए, राज्य को आर्थिक या विनियामक उपायों के मार्ग से उपाय खोजने के लिए व्यापक अधिकार दिए जाने चाहिएं और न्यायालय को, जब तक कि कानून या संविधान द्वारा विवश न किया जाए, इस अधिक्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करना चाहिए या ऐसी किसी विधि को अविधिमान्य नहीं करना चाहिए ।"

19. शोधन अक्षमता समिति ने किसी कम्पनी के संबंध में लम्बित दिवाला कार्यवाही में वित्तीय लेनदारों के साथ व्यापार करने वाले लेनदारों के मुकाबले विशिष्ट तरीके से बर्ताव किए जाने का एक तर्काधार प्रदान किया है । यह तर्काधार किसी कम्पनी के दिवाला विवाद्यक के त्वरित समाधान के लिए लिया गया सत्याभाषी विचार है । न्यायालयों से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे अधिसंभाव्य रूप से दुरुपयोग या अपरिपक्वता या असमानता, जो इस विधान में अंतःस्थापित समझी जाती है, के आधार पर किसी विधान का न्यायनिर्णयन करें । 2016 की संहिता के अन्तर्गत किसी कम्पनी की दिवाला प्रक्रिया में वित्तीय लेनदार के साथ विशिष्ट रूप से व्यवहार किए जाने के तर्काधार के बाबत यह नहीं कहा जा सकता कि वह संविधान के किसी उपबंध का अतिक्रमण करता है । **श्री मैटलिक्स लिमिटेड और एक अन्य** (उपरोक्त), **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) और **मोबिलोक्स इनोवेशन्स प्रा. लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले 2016 की संहिता के उपबंधों के आधार के विवाद्यक को निर्णीत नहीं करते, जैसी कि ईप्सा वर्तमान याचिका में की गई है ।

20. **कनक एक्सपोर्ट्स और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि आर्थिक मामलों में अनुसंधान किया जाना अनुज्ञेय है । **आर. के. गर्ग** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी विधान के दुरुपयोग की संभाव्यता ऐसा कोई आधार नहीं है जिसके आधार पर उस विधान को समाप्त कर दिया जाए । **राकेश कोहली और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब तक न्यायालय का यह मत नहीं है कि संविधान का घोर अतिक्रमण हुआ है, उसको असंवैधानिक के रूप में समाप्त नहीं किया जाना चाहिए । न्यायालय से अपेक्षित होता है कि वह कानून की संवैधानिक

विधिमान्यता के बाबत उपधारणा करे जैसा कि **सतीश कुमार गुप्ता और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है ।

21. इस मामले में, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के भंग के बाबत दलीलें दी गई हैं और **श्री मैटलिक्स लिमिटेड और एक अन्य** (उपरोक्त) और **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस पर विचार भी किया गया है । इन दलीलों को पर्याप्त नहीं पाया गया । अभिलेख पर ऐसा कुछ भी उपस्थित नहीं है जिसके आधार पर 2016 की संहिता के अन्तर्गत किसी कार्यवाही में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के भंग के आधार पर भिन्न मत व्यक्त किया जा सके । इन परिस्थितियों में 2017 की रिट याचिका संख्या 672 असफल होती है । इसको खारिज किया जाता है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

अवि.

(2018) 2 सि. नि. प. 196 **गुजरात**

महेन्द्र सिंह जोरुभा ज़ाला और एक अन्य

बनाम

कांताबेन श्रीकृष्ण अग्रवाल (मृतक) और एक अन्य

तारीख 5 सितंबर, 2017

न्यायमूर्ति (सुश्री) बेला एम. त्रिवेदी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 1, नियम 10, आदेश 22, नियम 3 और 10 [विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20] – विक्रय-करार के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – अपील के लंबन के दौरान एकमात्र वादी की मृत्यु – मृतक के विधिक वारिसों द्वारा पक्षकार बनने के लिए आवेदन न देना – अपील का स्वतः उपशमन – तृतीय पक्षकार द्वारा पक्षकार बनने के लिए आवेदन – ग्राह्यता – ऐसा कोई आवेदन केवल कार्यवाहियों के लंबन के दौरान ही ग्रहण किया जा सकता है न कि कार्यवाहियों के उपशमन के पश्चात् – अतः ऐसा आवेदन खारिज किए जाने योग्य है ।

2017 का सिविल आवेदन सं. 9970 तीसरे पक्षकार-आवेदकों द्वारा मृतक-मूल आवेदक कांताबेन श्रीकृष्ण अग्रवाल के विधिक वारिस बनाने के लिए आवेदकों द्वारा फाइल 2014 के सिविल आवेदन सं. 10253 में दिया गया है जिसके द्वारा 2008 के विशेष सिविल आवेदन सं. 5411 में आवेदकों के रूप में पक्षकार बनाने का अनुरोध किया गया है । समान रूप में 2017 का सिविल आवेदन सं. 10370 तीसरे पक्षकार-आवेदकों द्वारा 2011 की प्रथम अपील सं. 1589 में अभिलेख पर मृतक मूल अपीलार्थी-कांताबेन के विधिक वारिस बनाने के लिए फाइल किया गया है और उनके द्वारा 2014 का सिविल आवेदन सं. 10254 उक्त प्रथम अपील में अपीलार्थियों के रूप में पक्षकार बनाने/संस्थित करने का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया है । आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह उल्लेखनीय है कि न तो मृतक अपीलार्थी/आवेदक कांताबेन के विधिक वारिसों ने और न ही प्रथम अपील तथा विशेष सिविल आवेदन में के प्रत्यर्थियों ने, प्रथम अपील या विशेष सिविल आवेदन में मृतक कांताबेन के विधिक वारिसों के प्रतिस्थापन के लिए कोई आवेदन फाइल किया है । तृतीय पक्षकार-आवेदकों द्वारा प्रथम अपील और विशेष आवेदन में अपीलार्थी/आवेदकों के रूप में स्वयं को पक्षकार बनाने के लिए उनके द्वारा फाइल किए गए आवेदनों में उक्त मृतक कांताबेन के विधिक वारिस बनाने के लिए आवेदन फाइल किए गए हैं । चूंकि आवेदक अभी तक प्रथम अपील या विशेष सिविल आवेदन में पक्षकार नहीं बने हैं इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें कार्यवाहियों के जिनका पहले ही उपशमन कर दिया गया है, अभिलेख पर मृतक कांताबेन के विधिक वारिस बनाने के लिए आवेदन फाइल करने के लिए कोई अधिकार प्राप्त है । किसी भी पक्षकार ने उपशमन को अपास्त करने के लिए भी कोई आवेदन फाइल नहीं किया है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि उक्त प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन का पहले ही उपशमन किया जा चुका है इसलिए उपशमित कार्यवाहियों में तीसरे पक्षकार आवेदकों की ओर से ऐसे आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 के नियम 10 या आदेश 22 के नियम 3 या आदेश 22 के नियम 10 के अधीन भी ग्रहण किए जाने योग्य नहीं हैं । ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री मेहता की ओर से प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन को चलाने के लिए आवेदकों को अनुज्ञात करने हेतु दी गई वैकल्पिक दलील भी स्वीकार नहीं की जा सकती । तृतीय पक्षकार-आवेदकों द्वारा स्वयं को अपीलार्थी/आवेदकों के रूप में पक्षकार बनाने के

लिए फाइल किए गए आवेदन लंबित कार्यवाहियों में सुने और विनिश्चित किए जा सकते हैं न कि ऐसी कार्यवाहियों में जिनका पहले ही उपशमन किया जा चुका है । वे ऐसे किसी अन्य उपचार का अवलंब ले सकते हैं जो विधि के अधीन अनुज्ञेय हो । इस प्रक्रम पर न्यायालय प्रश्नगत भूमि में तृतीय पक्षकार-आवेदकों के अधिकारों को गुण-दोष के आधार पर निपटाने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि आवेदकों द्वारा पहले ही पृथक् वाद कार्यवाहियां आरंभ की जा चुकी हैं, तथापि, यह कहना पर्याप्त होगा कि आवेदकों द्वारा सिविल आवेदनों में अपीलार्थी/आवेदकों के रूप में स्वयं को पक्षकार बनाने के लिए मृतक कांताबेन के विधिक वारिसों को अभिलेख पर लाने के लिए फाइल किए गए 2017 के सिविल आवेदन सं. 9970 और 2017 के सिविल आवेदन 10370 में दिए गए आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं हैं क्योंकि ये प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन में फाइल किए गए हैं जिनका पहले ही उपशमन किया जा चुका है, अतः दोनों आवेदन खारिज किए जाने योग्य हैं और एतद्द्वारा खारिज किए जाते हैं । परिणामतः अन्य आवेदन अर्थात् क्रमशः 2014 का सिविल आवेदन सं. 10253 और विशेष सिविल आवेदन और प्रथम अपील में फाइल 2014 का सिविल आवेदन सं. 10254 भी खारिज किए जाते हैं । (पैरा 15, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3747 = (2016) 1 एस. सी. सी. 730 : **शारदम्मा** बनाम **मोहम्मद प्यारे जान (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और एक अन्य ;**	10
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3109 = 2010 (3) जी. एल. एच. 281 : **मुम्बई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **रिजेन्सी कन्वेंशन सेंटर और होटल्स प्राइवेट लि. और अन्य ;**	10
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4244 = (2003) 10 एस. सी. सी. 691 : **मिठाई लाल दलसंगर सिंह और अन्य** बनाम **अन्नाबाई देवराम कीनी और अन्य ;**	14

[2002] (2002) 9 एस. सी. सी. 28 = 2002 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2582 :
उड़ीसा सरकार बनाम **अशोक ट्रांसपोर्ट एजेन्सी** ; 10

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2552 = (2001) 6 एस. सी. सी. 534 :
धुरन्धर प्रसाद सिंह बनाम **जय प्रकाश यूनिवर्सिटी** । 10

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण अधिकारिता : 2017 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 9970.

सिविल प्रकिया संहिता, 1908 के आदेश 1, नियम 10 के अधीन आवेदन ।

आवेदकों की ओर से सुश्री शालिनी मेहता और श्री नीरज जे. वासु

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री आर. एस. संजनवाला आदित्य बी. मेहता, देवांग नानावटी, रवीना वी पटेल, मिहिर जोशी, सुश्री तिरुशा पटेल और सुश्री जीगना सूचक

न्यायमूर्ति (सुश्री) बेला एम. त्रिवेदी – 2017 का सिविल आवेदन सं. 9970 तीसरे पक्षकार-आवेदकों द्वारा मृतक-मूल आवेदक कांताबेन श्रीकृष्ण अग्रवाल के विधिक वारिस बनाने के लिए आवेदकों द्वारा फाइल 2014 के सिविल आवेदन सं. 10253 में दिया गया है जिसके द्वारा 2008 के विशेष सिविल आवेदन सं. 5411 में आवेदकों के रूप में पक्षकार बनाने का अनुरोध किया गया है । समान रूप में 2017 का सिविल आवेदन सं. 10370 तीसरे पक्षकार-आवेदकों द्वारा 2011 की प्रथम अपील सं. 1589 में अभिलेख पर मृतक मूल अपीलार्थी-कांताबेन के विधिक वारिस बनाने के लिए फाइल किया गया है और उनके द्वारा 2014 का सिविल आवेदन सं. 10254 उक्त प्रथम अपील में अपीलार्थियों के रूप में पक्षकार बनाने/संस्थित करने का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया है ।

2. उक्त कांताबेन की जो प्रथम अपील में एकमात्र अपीलार्थी थी और विशेष सिविल आवेदन में एकमात्र आवेदक थी, तारीख 26 मई, 2017 को मृत्यु हो गई ।

3. वर्तमान कार्यवाहियों से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य जो अभिलेख से दर्शित होते हैं, ये हैं कि विवादित भूमि जिसकी सर्वेक्षण सं. 220/1 है और जिसका माप 2 एकड़ 34 गुंठा है, बोडकदेव में स्थित है । उक्त भूमि का मूल स्वामी हरि भाई तुलसी भाई पटेल था जिसने तारीख 25 अप्रैल, 1968 को कांताबेन अग्रवाल के हक में एक अरजिस्ट्रीकृत विक्रय करार निष्पादित किया था । उक्त हरि भाई तुलसी भाई पटेल की तारीख 1 अक्तूबर, 1972 को मृत्यु हो गई । इसके पश्चात् उक्त कांताबेन ने उक्त हरि भाई के विधिक वारिसों के विरुद्ध 1975 का विशेष सिविल वाद सं. 1 फाइल किया जिसमें उसने हरि भाई द्वारा निष्पादित उक्त करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए अनुरोध किया । ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त कांताबेन ने उक्त वाद में अभियोजन चलाने के लिए तारीख 9 दिसंबर, 2002 को डाक्टर हर्षद भूपतकर नामक व्यक्ति के हक में एक मुख्तारनामा निष्पादित किया था । उक्त मुख्तारनामा धारक डाक्टर हर्षद भूपतकर ने तारीख 4 नवंबर, 2004 को पुरशिश (प्रदर्श 254) प्रस्तुत करके उक्त वाद वापस ले लिया । उक्त पुरशिश के अनुसरण में संबंधित न्यायालय द्वारा तारीख 6 नवंबर, 2004 को वाद वापस लेना अनुज्ञात किया गया था । यह भी प्रतीत होता है कि इस दौरान मूल स्वामी हरि भाई तुलसी भाई के पौत्र और प्रवीन भाई हरि भाई के पुत्रों अर्थात् अतिन भाई और मनीष भाई ने तारीख 12 जून, 2002 को पुरुषोत्तम प्रवीन भाई पटेल नामक व्यक्ति के हक में प्रश्नगत भूमि में अपने एक तिहाई भाग के संबंध में एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किया । उक्त पुरुषोत्तम भाई प्रवीन भाई पटेल ने तारीख 18 मार्च, 2005 को उक्त मुख्तारनामा धारक डाक्टर हर्षद भूपतकर के हक में वाद भूमि में 1/3 भाग के संबंध में एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किया ।

4. तारीख 12 अगस्त, 2005 को उक्त कांताबेन-मूल वादी ने 1975 के वाद सं. 1 में 2005 का प्रकीर्ण सिविल आवेदन सं. 37 फाइल किया जिसमें उसने उक्त वाद के पुनः स्थापन के लिए विलंब माफ करने का अनुरोध किया, जो वाद उसके मुख्तार श्री भूपतकर ने वापस ले लिया था । न्यायालय द्वारा तारीख 22 नवंबर, 2006 को विलंब माफ करने के लिए फाइल उक्त आवेदन खारिज कर दिया था, जिसके विरुद्ध उक्त कांताबेन द्वारा 2007 का विशेष सिविल आवेदन सं. 2513 फाइल किया था । उच्च न्यायालय ने तारीख 18 अप्रैल, 2007 के आदेश द्वारा उक्त विशेष सिविल आवेदन का निपटान करते हुए तारीख 22 नवंबर, 2006 के आदेश को

अभिखंडित और अपास्त कर दिया और विचारण न्यायालय को वाद को पुनः स्थापित करके आवेदन को विनिश्चित करने का निदेश दिया । विचारण न्यायालय ने तारीख 23 अक्तूबर, 2007 के आदेश द्वारा 2007 का उक्त एम. सी. ए. सं. 36 खारिज कर दिया और वाद को पुनः स्थापित नहीं किया । उक्त कांताबेन ने उक्त आदेश से व्यथित होकर तारीख 26 दिसंबर, 2007 को 2008 का विशेष सिविल आवेदन सं. 5411 फाइल किया ।

5. यह भी प्रतीत होता है कि उक्त कांताबेन ने मूल स्वामी हरि भाई तुलसी भाई और प्रवीन भाई पुरुषोत्तम भाई के विरुद्ध तारीख 12 जून, 2002 के विक्रय विलेख और तारीख 18 मार्च, 2005 के विक्रय विलेख और डाक्टर हर्षद भूपतकर इत्यादि के हक में किए गए मुख्तारनामे के रद्दकरण का अनुरोध करते हुए 2007 का एक अन्य सिविल वाद सं. 376 फाइल किया था । उक्त वाद में प्रतिवादियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया जो न्यायालय द्वारा तारीख 16 जून, 2010 को मंजूर किया गया था और वाद-पत्र खारिज करने का आदेश पारित किया गया था । उक्त कांताबेन ने उक्त वाद में पारित उक्त निर्णय से व्यथित होकर 2011 की प्रथम अपील सं. 1589 फाइल की ।

6. यह भी प्रतीत होता है कि महेन्द्र सिंह जोरुभा ज़ाला और सुधीर भाई जयन्ती भाई दलाल (हमारे समक्ष के तृतीय पक्षकार-आवेदक) द्वारा उक्त कांताबेन के विरुद्ध उसके मुख्तारनामा धारक सपन एस. दलाल के जरिए यह अभिकथित करते हुए 2007 का नियमित सिविल वाद सं. 66 फाइल किया कि उक्त कांताबेन ने तारीख 2 अक्तूबर, 1998 को उक्त सपन दलाल के हक में एक मुख्तारनामा निष्पादित किया था और उक्त सपन दलाल ने कांताबेन के मुख्तारनामा धारक के रूप में तारीख 29 जनवरी, 2007 को तारीख 25 अप्रैल, 1968 के करार के अधीन अपने अधिकार विक्रीत करने के लिए एक अरजिस्ट्रीकृत करार निष्पादित किया था । उक्त वाद में वाद के पक्षकारों के बीच समझौता हो गया था और पक्षकारों द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2007 को पुरशिश फाइल किया गया था जिसके द्वारा प्रतिवादी अर्थात् उक्त सपन दलाल ने (जो वादियों अर्थात् सुधीर दलाल के पुत्रों में से एक पुत्र है) उक्त कांताबेन के मुख्तारनामा धारक के रूप में उक्त वाद में वादियों के दावे को स्वीकार कर लिया । ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् संबंधित न्यायालय द्वारा तारीख 3

मार्च, 2007 को उक्त समझौता पुरशिश के आधार पर डिक्री पारित की गई थी ।

7. तृतीय पक्षकार द्वारा आवेदकों (जो 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 66 में वादी हैं), ने 2008 के विशेष सिविल आवेदन सं. 5411 में मूल वादी कांताबेन के स्थान पर स्वयं को प्रतिस्थापित करने का अनुरोध करते हुए 2014 का सिविल आवेदन सं. 10253 फाइल किया । समान रूप में 2014 का सिविल आवेदन सं. 10254 तृतीय पक्षकार आवेदकों द्वारा 2011 की प्रथम अपील सं. 1589 में स्वयं को अपीलार्थियों के रूप में पक्षकार बनाने के लिए फाइल किया गया था । उक्त आवेदनों का मूल आवेदक/अपीलार्थी कांताबेन सहित संबंधित प्रत्यर्थियों ने अपने-अपने उत्तर फाइल करके विरोध किया था । उक्त आवेदनों के लंबन के दौरान उक्त कांताबेन की तारीख 26 मई, 2017 को मृत्यु हो गई । ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त कांताबेन और प्रवीन भाई पटेल इत्यादि के बीच कतिपय समझौता हुआ था और इसलिए उक्त कांताबेन ने प्रथम अपील तथा सिविल आवेदन जो लंबित रहा था, की वापसी की ईप्सा करते हुए तारीख 10 सितंबर, 2015 को एक आवेदन फाइल किया था ।

8. चूंकि उक्त कांताबेन की मृत्यु के पश्चात् उसके विधिक वारिसों को अभिलेख पर नहीं लाया गया था इसलिए तृतीय पक्षकार-आवेदकों ने उनके द्वारा फाइल किए गए सिविल आवेदनों के अभिलेख पर उक्त मृतक कांताबेन के विधिक वारिस बनाने क लिए क्रमशः विशेष सिविल आवेदन और प्रथम अपील में आवेदक/अपीलार्थियों के रूप में पक्षकार बनाने के लिए 2017 का सिविल आवेदन सं. 9970 और 2017 का सिविल आवेदन सं. 10370 फाइल किया ।

9. आवेदकों के विद्वान् अधिवक्ता श्री नीरज जे. वासु की ओर से उपस्थित सुश्री शालिनी मेहता ने बल देकर यह दलील दी है कि आवेदकों ने पहले ही लंबित कार्यवाहियों में अपीलार्थी/आवेदकों के रूप में पक्षकार बनाने के लिए आवेदन फाइल कर दिए हैं क्योंकि उन्हें यह आशंका थी कि मूल अपीलार्थी मृतक कांताबेन मुख्तारनामा धारक सपन दलाल द्वारा निष्पादित बनाखत के अधीन आवेदकों के अधिकारों की अनदेखी करके प्रत्यर्थियों से संधि कर सकती है और चूंकि उक्त आवेदनों के लंबन के दौरान उक्त कांताबेन की मृत्यु हो गई थी इसलिए आवेदकों द्वारा उक्त कांताबेन के विधिक वारिस बनाने के लिए वर्तमान आवेदन फाइल किए गए

हैं । श्री मेहता ने यह दलील दी है कि मृतक कांताबेन के विधिक वारिसों से यह अपेक्षित है कि वे प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन के अभिलेख पर लाए जाएं अन्यथा आवेदकों को उक्त कांताबेन के मुख्तारनामा धारक सपन दलाल द्वारा तारीख 29 जनवरी, 2007 को निष्पादित बनाखत के अधीन उनके अधिकारों की पैरवी के लिए कोई उपचार उपलब्ध नहीं होगा । उन्होंने वैकल्पिक रूप से दलील दी है कि यदि मृतक कांताबेन के विधिक वारिसों को अभिलेख पर लाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाता है तो आवेदकों के अपीलार्थी/आवेदकों के रूप में स्वयं को पक्षकार बनाने के लिए आवेदन मंजूर किए जाएंगे और उन्हें प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन के साथ आगे मामले को चलाने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है क्योंकि मृतक कांताबेन के विधिक वारिस उक्त प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन में आगे कार्यवाही करने के लिए हितबद्ध नहीं हैं ।

10. श्री मेहता ने उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित **मुम्बई इंटरनेशनल एयरपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **रिजेन्सी कन्वेंशन सेंटर और होटल्स प्राइवेट लि. और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10(2) के अधीन किसी पक्षकार का नाम जोड़ने या हटाने का विवेकाधिकार है और न्याय के हित में न्यायिक विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए । उन्होंने उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित **धुरन्धर प्रसाद सिंह** बनाम **जय प्रकाश यूनिवर्सिटी**[2] और **शारदम्मा** बनाम **मोहम्मद प्यारे जान (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और एक अन्य**[3] वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि आवेदक लंबित कार्यवाहियों में मृतक कांताबेन के मुख्तारनामा धारक श्री सपन दलाल द्वारा निष्पादित बनाखत के आधार पर प्रश्नगत संपत्ति में अधिकार और हित प्राप्त कर चुके हैं इसलिए उन्हें अपीलार्थियों और आवेदकों के रूप में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 10 के अधीन पक्षकार बनने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए । इस संबंध में उन्होंने यह दलील देने के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित **उड़ीसा सरकार** बनाम **अशोक ट्रांसपोर्ट एजेन्सी**[4]

---

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3109 = 2010 (3) जी. एल. एच. 281.

[2] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2552 = (2001) 6 एस. सी. सी. 534.

[3] ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3747 = (2016) 1 एस. सी. सी. 730.

[4] (2002) 9 एस. सी. सी. 28 = 2002 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2582.

वाले मामले के विनिश्चय का अवलंब लिया है कि जहां लंबित कार्यवाहियों में कार्रवाई की गई हो वहां ऐसी कार्यवाही प्रवर्तनीय और आबद्धकर होगी और इसलिए आवेदकों को, अपीलार्थियों/आवेदकों के रूप में पक्षकार बनाए जाने के लिए अनुज्ञात किया जाना आवश्यक है ।

11. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थियों-वाद संपत्ति के स्वामियों की विद्वान् अधिवक्ता सुश्री तिरुशा पटेल के साथ उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री मिहिर जोशी ने यह दलील दी है कि प्रथम अपील तथा विशेष सिविल आवेदन की कार्यवाहियां एकमात्र अपीलार्थी/कांताबेन की मृत्यु होने पर उपशमित कर दी गई हैं और उसके विधिक वारिसों को विहित समय सीमा के भीतर अभिलेख पर पक्षकार नहीं बनाया गया है इसलिए आवेदकों द्वारा जिन्हें अपीलार्थी/आवेदक के स्थान पर कार्यवाही करने का अधिकार नहीं है, फाइल किए गए आवेदन खारिज किए जाने योग्य हैं । श्री जोशी ने उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि केवल उन पक्षकारों को जो विवादित संविदा के पक्षकार हैं या उत्तराधिकारी हैं या विक्रेता हैं, करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के संबंध में कार्यवाहियों में पक्षकार बनाया जा सकता है । उन्होंने यह भी दलील दी कि अभिकथित मुख्तारनामा धारक श्री सपन दलाल आवेदकों में से एक का पुत्र है और उन्होंने एक दूसरे के साथ संधि करके 2007 का वाद सं. 66 फाइल किया है और पक्षकारों के बीच हुए अभिकथित समझौते के आधार पर न्यायालय से कांताबेन की जानकारी के बिना डिक्री की ईप्सा की है, इसलिए आवेदकों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने उक्त कांताबेन द्वारा आरंभ की गई मुकदमेदारी को चलाने के लिए कोई अधिकार अर्जित किया है विशेषतया तब जब कि उक्त कांताबेन ने स्वयं अपने जीवनकाल के दौरान अपने स्थान पर अपीलार्थी-आवेदकों के रूप में उनको पक्षकार बनाने के लिए आवेदकों के आवेदनों का विरोध किया था ।

12. उक्त कांताबेन के विधिक वारिसों के विद्वान् अधिवक्ता श्री आदित्य मेहता के साथ उपस्थित श्री संजनवाला ने विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री मिहिर जोशी की दलीलों का समर्थन करते हुए आगे यह दलील दी है कि उक्त कांताबेन के विधिक वारिस प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन को आगे चलाने में हितबद्ध नहीं हैं और इसलिए आवेदक उन्हें उक्त कार्यवाहियों में अभिलेख पर लाने के लिए बाध्य नहीं कर सकते ।

13. आरंभतः यह कहा जा सकता है कि एकमात्र अपीलार्थी/आवेदक कांताबेन की मृत्यु हो गई थी और उसके विधिक प्रतिनिधियों ने विहित

समय सीमा के भीतर अभिलेख पर पक्षकार बनाने के लिए कार्यवाही नहीं की और इसलिए प्रथम अपील तथा विशेष सिविल आवेदन विधि के प्रवर्तन द्वारा उपशमित हो गया था । इस संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 3 के उपबंधों को उद्धृत किया जाता है :–

"3. **कई वादियों में से एक या एकमात्र वादी की मृत्यु की दशा में प्रक्रिया** – (1) जहां दो या अधिक वादियों में से एक की मृत्यु हो जाती है और वाद लाने का अधिकार अकेले उत्तरजीवी वादी को या अकेले उत्तरजीवी वादियों को बचा नहीं रहता है, या एकमात्र वादी या एकमात्र उत्तरजीवी वादी की मृत्यु हो जाती है, और वाद लाने का अधिकार बचा रहता है, वहां इस निमित्त आवेदन किए जाने पर न्यायालय मृत वादी के विधिक प्रतिनिधि को पक्षकार बनवाएगा और वाद में अग्रसर होगा ।

(2) जहां विधि द्वारा परिसीमित समय के भीतर कोई आवेदन उपनियम (1) के अधीन नहीं किया जाता है वहां वाद का उपशमन वहां तक हो जाएगा जहां तक मृत वादी का संबंध है और प्रतिवादी के आवेदन पर न्यायालय उन खर्चों को उसके पक्ष में अधिनिर्णीत कर सकेगा जो उसने वाद की प्रतिरक्षा में उपगत किए हों और वे मृत वादी की संपदा से वसूल किए जाएंगे ।"

14. उपर्युक्त उपबंध के परिशीलन मात्र से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि जहां वादी (वर्तमान मामले में एकमात्र अपीलार्थी) की मृत्यु हो जाती है और वाद चलाने का अधिकार उत्तरजीवित रहता है वहां न्यायालय इस संबंध में पेश किए गए आवेदन के आधार पर मृतक वादी के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने के लिए कार्यवाही कर सकता है और वाद (वर्तमान मामले में अपील) में कार्यवाही कर सकता है तथापि चूंकि समय सीमा के भीतर कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया है इसलिए वाद का उपशमन हो जाता है । उच्चतम न्यायालय ने **मिठाई लाल दलसंगर सिंह और अन्य** बनाम **अन्नाबाई देवराम कीनी और अन्य**[1] वाले मामलों में अन्य बातों के साथ-साथ यह भी अभिनिर्धारित किया है कि विहित समय सीमा के भीतर अभिलेख पर विधिक वारिसों को पक्षकार बनाने के लिए कोई आवेदन फाइल किए जाने में विफल रहने पर वाद का उपशमन स्वतः हो जाता है और वाद/अपील के उपशमित होने के रूप में खारिज करने वाला

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4244 = (2003) 10 एस. सी. सी. 691.

कोई विनिर्दिष्ट आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है । वर्तमान मामले में एकमात्र अपीलार्थी कांताबेन की मृत्यु हो गई है और चूंकि उसके विधिक वारिसों ने मूल अपीलार्थी/आवेदक के स्थान पर स्वयं को प्रतिस्थापित करने के लिए विहित समय सीमा के भीतर कोई आवेदन पेश नहीं किया है इसलिए विशेष सिविल आवेदन और प्रथम अपील विधिक परिसीमा के प्रवर्तन द्वारा उपशमित हो गई है । अतः इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या तृतीय पक्षकार आवेदक 2008 के विशेष सिविल आवेदन सं. 5411 में फाइल किए गए 2014 के सिविल आवेदन सं. 10253 में और 2011 की प्रथम अपील सं. 1589 में फाइल 2015 के सिविल आवेदन सं. 10254 में प्रत्यर्थी सं. 1/1 से 1/3 के रूप में मृतक कांताबेन के विधिक वारिस बनने के लिए उपशमित कार्यवाहियों में आवेदन फाइल कर सकते हैं ।

15. यह उल्लेखनीय है कि न तो मृतक अपीलार्थी/आवेदक कांताबेन के विधिक वारिसों ने और न ही प्रथम अपील तथा विशेष सिविल आवेदन में के प्रत्यर्थियों ने, प्रथम अपील या विशेष सिविल आवेदन में मृतक कांताबेन के विधिक वारिसों के प्रतिस्थापन के लिए कोई आवेदन फाइल किया है । तृतीय पक्षकार-आवेदकों द्वारा प्रथम अपील और विशेष आवेदन में अपीलार्थी/आवेदकों के रूप में स्वयं को पक्षकार बनाने के लिए उनके द्वारा फाइल किए गए आवेदनों में उक्त मृतक कांताबेन के विधिक वारिस बनाने के लिए आवेदन फाइल किए गए हैं । चूंकि आवेदक अभी तक प्रथम अपील या विशेष सिविल आवेदन में पक्षकार नहीं बने हैं इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें कार्यवाहियों के जिनका पहले ही उपशमन कर दिया गया है, अभिलेख पर मृतक कांताबेन के विधिक वारिस बनाने के लिए आवेदन फाइल करने के लिए कोई अधिकार प्राप्त है । किसी भी पक्षकार ने उपशमन को अपास्त करने के लिए भी कोई आवेदन फाइल नहीं किया है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि उक्त प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन का पहले ही उपशमन किया जा चुका है इसलिए उपशमित कार्यवाहियों में तीसरे पक्षकार-आवेदकों की ओर से ऐसे आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 के नियम 10 या आदेश 22 के नियम 3 या आदेश 22 के नियम 10 के अधीन भी ग्रहण किए जाने योग्य नहीं हैं । ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री मेहता की ओर से प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन को चलाने के लिए आवेदकों को अनुज्ञात करने हेतु दी गई वैकल्पिक दलील भी स्वीकार नहीं की जा सकती । तृतीय पक्षकार-

आवेदकों द्वारा स्वयं को अपीलार्थी/आवेदकों के रूप में पक्षकार बनाने के लिए फाइल किए गए आवेदन लंबित कार्यवाहियों में सुने और विनिश्चित किए जा सकते हैं न कि ऐसी कार्यवाहियों में जिनका पहले ही उपशमन किया जा चुका है । वे ऐसे किसी अन्य उपचार का अवलंब ले सकते हैं जो विधि के अधीन अनुज्ञेय हो ।

16. इस प्रक्रम पर न्यायालय प्रश्नगत भूमि में तृतीय पक्षकार आवेदकों के अधिकारों को गुण-दोष के आधार पर निपटाने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि आवेदकों द्वारा पहले ही पृथक् वाद कार्यवाहियां आरंभ की जा चुकी हैं, तथापि, यह कहना पर्याप्त होगा कि आवेदकों द्वारा सिविल आवेदनों में अपीलार्थी/आवेदकों के रूप में स्वयं को पक्षकार बनाने के लिए मृतक कांताबेन के विधिक वारिसों को अभिलेख पर लाने के लिए फाइल किए गए 2017 के सिविल आवेदन सं. 9970 और 2017 के सिविल आवेदन 10370 में दिए गए आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं हैं क्योंकि ये प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन में फाइल किए गए हैं जिनका पहले ही उपशमन किया जा चुका है, अतः दोनों आवेदन खारिज किए जाने योग्य हैं और एतद्द्वारा खारिज किए जाते हैं ।

17. परिणामतः अन्य आवेदन अर्थात् क्रमशः 2014 का सिविल आवेदन सं. 10253 और विशेष सिविल आवेदन और प्रथम अपील में फाइल 2014 का सिविल आवेदन सं. 10254 भी खारिज किया जाता है ।

18. चूंकि प्रथम अपील और विशेष सिविल आवेदन की कार्यवाहियों का पहले ही उपशमन किया जा चुका है इसलिए उक्त कार्यवाहियों में अतिरिक्त आदेश पारित किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इंडिया लि.

बनाम

ज्योति स्ट्रेक्चर्स

तारीख 11 दिसम्बर, 2017

न्यायमूर्ति योगेश खन्ना

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 34 [दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 की धारा 7 और 14(1)(क)] – मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन के अन्तर्गत लम्बित सुनवाई को संहिता के उपबंधों के अन्तर्गत स्थगित किया जाना – माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाही दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 14(1)(क) के अवरोध द्वारा बाधित नहीं है और इस धारा में प्रयुक्त शब्द "कार्यवाहियों" का आशय समस्त कार्यवाहियों से नहीं होता ।

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 – धारा 34 [दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 की धारा 7 और 14(1)(ख)] – निगमित देनदार की आस्तियों के विरुद्ध ऋण वसूली कार्रवाई को प्रतिषिद्ध किया जाना – संहिता की धारा 14(1)(ख) के अधीन ऋण स्थगन निगमित देनदार की आस्तियों के विरुद्ध ऋण वसूली कार्यवाही को प्रतिषिद्ध किए जाने के लिए आशयित है और माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाही का जारी रहना, जो निगमित देनदार की आस्तियों को नुकसान पहुंचाने वाली, न्यून या विलुप्त करने वाली या विपरीत रूप से प्रभावित करने वाली नहीं है, संहिता की धारा 14(1)(क) के अधीन प्रतिषिद्ध नहीं है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि प्रस्तुत याचिका माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा प्रत्यर्थी के पक्ष में पारित तारीख 20 मई, 2016 के माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 34 के अधीन फाइल की गई कार्यवाही को स्थगित किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल की गई है । यह पंचाट प्रत्यर्थी के पक्ष में विशुद्ध रूप से धनीय डिक्री की प्रकृति में पारित किया गया है । अधिनियम की धारा 34 के अधीन फाइल की गई इन कार्यवाहियों के

लम्बन के दौरान प्रत्यर्थी-कम्पनी के विरुद्ध मुम्बई स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष एक वित्तीय लेनदार द्वारा 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन एक आवेदन प्रत्यर्थी के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने तारीख 4 जुलाई, 2017 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन को सुनवाई के लिए ग्रहण कर लिया और संहिता की धारा 14 के निबंधनों के अनुसार ऋणस्थगन घोषित कर दिया । अब यह प्रश्न उद्भूत हुआ है कि क्या अधिनियम की धारा 34 के अधीन फाइल की गई वर्तमान कार्यवाही को संहिता की धारा 14(1)(क) के अधीन स्थगित कर दिया जाना चाहिए । याचिका का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – इसलिए, निम्नलिखित कारणोंवश न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वर्तमान कार्यवाही धारा 14(1)(क) के अवरोध द्वारा बाधित नहीं होगी अर्थात् (क) "कार्यवाहियों" का आशय "समस्त कार्यवाहियों" से नहीं होता, (ख) संहिता की धारा 14(1)(ख) के अधीन ऋणस्थगन निगमित देनदार की आस्तियों के विरुद्ध ऋण वसूली कार्रवाई को प्रतिषिद्ध किए जाने के लिए आशयित है, (ग) माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्रवाइयों का जारी रहना, जो निगमित देनदार की आस्तियों को नुकसान पहुंचाने वाली, न्यून या विलुप्त करने वाली या विपरीत रूप से प्रभावित करने वाली नहीं हैं, संहिता की धारा 14(1)(क) के अधीन प्रतिषिद्ध नहीं है, (घ) शब्द "सम्मिलित" शब्द "कार्यवाहियों" की परिधि को स्पष्ट करने वाला है, (ङ) शब्द "कार्यवाहियों" उस कार्यवाही की प्रकृति को निर्बंधित करने वाला होगा जो उसका अनुसरण करता है अर्थात् निगमित देनदार की आस्तियों के विरुद्ध ऋण वसूली कार्यवाही, (च) संहिता की धारा 33(5) में प्रयुक्त व्यापक वाक्यांश "निगमित देनदार द्वारा या उसके विरुद्ध" के विरुद्ध धारा 14(1)(क) में संकुचित शब्दों "निगमित देनदार के विरुद्ध" का प्रयोग निर्बंधित अर्थ और उपयोजन के लिए आशयित है, (छ) माध्यस्थम् अधिनियम धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों (अर्थात् पंचाट का प्रवर्तन और निष्पादन) "अर्थात् पंचाट के विरुद्ध आक्षेप" और धारा 36 के अधीन कार्यवाहियों के मध्य विभेद करता है । धारा 34 के अधीन कार्यवाहियां किसी पंचाट के निष्पादन के पूर्व की कार्यवाहियां होती हैं । केवल धारा 34 के अधीन फाइल किए गए आक्षेपों के विनिर्धारण के पश्चात् ही कोई भी पक्ष पंचाट को निष्पादित किए जाने की कार्यवाही कर सकता है और यदि आक्षेपों को निगमित देनदार के विरुद्ध निर्णीत किया

जाता है तो निगमित देनदार के विरुद्ध उसका प्रवर्तन निश्चित रूप से धारा 14(1)(क) के अधीन ऋणस्थगन द्वारा आच्छादित होगा । आक्षेप का जो दूसरा भाग है, वह यह है कि क्या यदि एक बार ऋणस्थगन घोषित कर दिया जाता है, तो फाइल किए गए आक्षेपों के प्रकाश में कार्यवाही के जारी रहने का विनिश्चय केवल समाधान वृत्तिक द्वारा लिया जा सकता है, चूंकि संहिता की धारा 17 के अनुसार अन्तरिम समाधान वृत्तिक की नियुक्ति की तारीख से निगमित देनदार के मामलों का प्रबंधन अन्तरिम समाधान वृत्तिक में निहित हो जाता है और इसलिए, इस मामले की विलक्षण परिस्थितियों को देखते हुए, जहां आक्षेपक द्वारा खंडन दावा फाइल किया गया, यद्यपि उसको अस्वीकृत कर दिया गया, यह उचित होगा कि अन्तरिम समाधान वृत्तिक को इन कार्यवाहियों की जानकारी दी जाए और वह इन कार्यवाहियों को जारी रखे जाने की बाबत सहमति प्रदान करे । इसलिए, इन कार्यवाहियों के जारी रहने से अधिनियम की धारा 34 के अधीन विवाद्यकों के विनिर्धारण की ईप्सा करने वाले किसी भी पक्ष के अधिकारों को कोई क्षति कारित नहीं होगी और संहिता का उद्देश्य संरक्षित रहेगा न कि विफल होगा । तद्नुसार, न्यायालय के समक्ष उठाए गए प्रश्न का उत्तर दिया जाता है । (पैरा 14, 16 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	अपील संख्या 147/2017 : **केनरा बैंक** बनाम **डेक्कन क्रोनिकल होल्डिंस लिमिटेड कम्पनी ;**	7
[2017]	2017 एस. सी. सी. आनलाइन एस. सी. 1025 : **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम **आई. सी. आई. सी. आई. बैंक और एक अन्य ।**	11

प्रकीर्ण (सिविल) अधिकारिता : 2016 की मूल प्रकीर्ण याचिका (व्यवसायिक) संख्या 397.

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन फाइल किए गए आक्षेप ।

याची की ओर से — सर्वश्री के. के. राय (वरिष्ठ अधिवक्ता) और साथ में पी. के. मिश्रा और अंशुल राय

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री असीम सूद, (सुश्री) पायल चन्द्रा, ध्रुव सूद और रहिद्म बुआरिया

न्यायमूर्ति योगेश खन्ना – यह याचिका माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा प्रत्यर्थी के पक्ष में पारित तारीख 20 मई, 2016 के माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहकर निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 34 के अधीन फाइल की गई है । यह पंचाट प्रत्यर्थी के पक्ष में विशुद्ध रूप से धनीय डिक्री की प्रकृति में पारित किया गया है ।

2. अधिनियम की धारा 34 के अधीन फाइल की गई इन कार्यवाहियों के लम्बन के दौरान प्रत्यर्थी-कम्पनी के विरुद्ध मुम्बई स्थित राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण के समक्ष एक वित्तीय लेनदार द्वारा 2016 की दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अधीन एक आवेदन प्रत्यर्थी के विरुद्ध निगमित दिवाला समाधान प्रक्रिया आरम्भ किए जाने की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया और राष्ट्रीय कम्पनी विधि अधिकरण ने तारीख 4 जुलाई, 2017 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन को सुनवाई के लिए ग्रहण कर लिया और संहिता की धारा 14 के निबंधनों के अनुसार ऋणस्थगन घोषित कर दिया ।

3. अब जो प्रश्न उद्भूत हुआ है, यह है कि क्या अधिनियम की धारा 34 के अधीन फाइल की गई वर्तमान कार्यवाही को संहिता की धारा 14 (1) (क) के अधीन स्थगित कर दिया जाना चाहिए ।

4. प्रत्यर्थी का पक्षकथन यह है कि यदि कार्यवाही को स्थगित कर दिया गया तो वह अपने पक्ष में पारित पंचाट का निष्पादन उस विस्तारित अवधि तक करा पाने में असमर्थ हो जाएगा जिस अवधि के दौरान ऋणस्थगन विद्यमान रहेगा और अपने देयों को वसूल कर पाने में असमर्थ हो जाएगा, तद्द्वारा उसकी वित्तीय स्थिति और अधिक दयनीय हो जाएगी । अतः, विवाद्यक यह है कि क्या संहिता की धारा 14(1)(क) में प्रयुक्त शब्द "कार्यवाही" को "समस्त विधिक कार्यवाहियों" के अर्थ में पढ़ा जाए या विधिक कार्यवाहियों के विशिष्ट प्रकार के निर्बंधित अर्थ में पढ़ा जाए अर्थात् "ऋण वसूली कार्यवाही" जो दिवाला समाधान की अवधि के दौरान देनदार की आस्तियों को समाप्त या न्यून करने वाला प्रभाव रखता हो ।

5. संहिता की धारा 14(1)(क) इस प्रकार है :–

"14(1) उपधारा (2) और उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन

रहते हुए, दिवाला प्रारंभ की तारीख को, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी सभी को आदेश द्वारा प्रतिषिद्धि के लिए निम्नलिखित अधिस्थगन की घोषणा करेगा, अर्थात् –

(क) निगमित ऋणी के विरुद्ध वाद को संस्थित करने या वादों को जारी रखने, कार्रवाईयां जिसके अंतर्गत विधि के किसी न्यायालय, अधिकरण, माध्यस्थम्, पैनल या अन्य प्राधिकारी के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश का निष्पादन भी है, संस्थित करना या उसको जारी रखना ।"

6. स्वीकृततः, शब्द "कार्यवाही" जैसा कि संहिता की धारा 14(1)(क) में उल्लिखित है, के पहले शब्द "समस्त" का प्रयोग नहीं होता, जिससे यह उपदर्शित होता है कि ऋणस्थगन के उपबंध निगमित देनदार के विरुद्ध समस्त कार्यवाहियों पर लागू होंगे ।

7. **केनरा बैंक** बनाम **डेक्कन क्रोनिकल होल्डिंग्स लिमिटेड कम्पनी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पहले ही अभिनिर्धारित कर दिया है कि ऋणस्थगन के उपबंध समस्त कार्यवाहियों पर लागू नहीं होते अर्थात् संविधान के अनुच्छेद 32 या 226 के अधीन कार्यवाहियों पर ।

8. संहिता का उद्देश्य निगमित देनदार को "विराम" अवधि के द्वारा अनुतोष उपलब्ध कराना है जिसके दौरान उसकी आस्तियां विलोपन या न्यून होने से संरक्षित रहती है और इसके परिणास्वरूप इस अवधि के दौरान वह अपनी वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ कर सकता है, पंचाट के निष्पादन न कराए जाने योग्य अवधि का विस्तार निगमित देनदार को उससे शोध्य रकम को वसूल किए जाने से प्रवारित करेगा और उसकी वित्तीय राशि में संवर्धन करेगा । इसका परिणाम वास्तव में संहिता के उद्देश्य के प्रत्यक्षतः विपरीत होगा । कानून के सत्य अर्थ को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ इस उपबंध का अर्थान्वयन सम्पूर्ण कानून के संदर्भ में किया जाना चाहिए, जिस प्रयोजन के लिए निर्वचन का तरीका लागू किया जाना चाहिए चाहे कानून की भाषा किसी भी प्रकार के संदिग्धार्थ से प्रकटतः स्वतंत्र ही क्यों न हो ।

9. संहिता की धारा 14(1)(क) का अर्थ और प्रयोजन उसके प्रतिवेशी उपबंधों के संदर्भ से भी भरोसे के साथ अभिनिश्चित किया जा सकता है । संहिता की धारा 14(1) के उपबंध (ख), (ग) और (घ) को संदर्भ में

---

[1] अपील संख्या 147/2017.

सहायता की दृष्टि से नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है और इससे पुनः दर्शित होता है कि ऋणस्थगन के उपबंध मात्र निगमित देनदार की आस्तियो को संरक्षित करने के प्रयोजनार्थ लागू होंगे । यह उपबंध इस प्रकार हैं :–

"14(1) * * *

(ख) निगमित ऋणी से उसकी किसी आस्ति का अंतरण विल्लंगम करना, अन्य संक्रामण या व्ययन करना या किसी विधिक अधिका या उसमें हित का कोई फायदा ;

(ग) किसी संपत्ति के संबंध में निगमित ऋणी द्वारा सृजित किसी प्रतिभूत हित के पुरोबंध, वसूली या प्रवृत्त की कोई कार्रवाई जिसके अन्तर्गत वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के अधीन कोई कार्रवाई भी है ;

(घ) किसी स्वामी या पट्टाधारा द्वारा किसी संपत्ति की वसूली जहां ऐसी संपत्ति निगमित ऋणी द्वारा अधिभोग में है या उसके कब्जे में है ।"

10. संहिता की धारा 14 ऋणस्थगन की संकल्पना के पीछे उपरोक्त प्रयोजन और उद्देश्य के प्रकाश में उन कार्यवाहियों पर लागू नहीं होगी जो निगमित देनदार के लाभ में हो जैसे कि इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां चूंकि वर्तमान कार्यवाहियां "ऋण वसूली कार्रवाई" नहीं हैं और इस न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष किसी भी प्रकार से निगमित देनदार की आस्तियों को नुकसान नहीं पहुंचाएगा या उनको न्यून, विलोपित या किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करेगा और इसलिए, ऋणस्थगन के प्रयोजन के सामंजस्य में रहेगा जिसमें दिवाला समाधान प्रक्रिया के दौरान निगमित देनदार की आस्तियों को एक साथ रखा जाना सम्मिलित और दिवाला और समाधान प्रक्रिया के दौरान प्रक्रिया का सुचारू रूप से समापन को सुकर बनाना और इस बात को सुनिश्चित करना कि कम्पनी एक सतत रूप से चलने वाले समुत्थान के रूप में कार्य करती रहे, सम्मिलित है ।

11. संहिता की तर्कसम्मता और संरचना पर शोधन विधि सुधार समिति की रिपोर्ट में भी यह प्रदर्शित होता है कि ऋणस्थगन वसूली कार्यवाहियों और निगमित देनदारों के विरुद्ध नए दावों के फाइल किए जाने पर लागू होगा और ऋणस्थगन का उद्देश्य यह है कि निगमित देनदार की आस्तियों पर कोई अतिरिक्त भार नहीं होना चाहिए । उच्चतम न्यायालय

द्वारा शोधन विधि सुधार समिति की रिपोर्ट का अवलंब **मैसर्स इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड** बनाम आई. सी. आई. सी. आई. बैंक और एक अन्य[1] वाले मामले में लिया गया है ।

12. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि यदि एक बार ऋणस्थगन प्रभावी हो जाता है, तो निगमित देनदार के विरुद्ध कोई कार्यवाही जारी नहीं रह सकती । विधि की उपरोक्त प्रतिपादना पर संदेह नहीं किया जा सकता, किन्तु फिर भी कार्यवाहियों की प्रकृति पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या यह कार्यवाहियां निगमित देनदार के विरुद्ध हैं या उसके पक्ष में हैं । निगमित देनदार के पक्ष में पारित किसी पंचाट के विरुद्ध कार्यवाहियों का स्थगन देनदार द्वारा उसकी रकम की वसूली के प्रयासों को विफल कर देगा और इसलिए संहिता की धारा 14(1)(क) के वर्जन के अन्तर्गत नहीं आएगा ।

13. यह तथ्य कि याचियों ने विद्वान् मध्यस्थ के समक्ष खंडन दावा फाइल किया, को स्वीकृत रूप से नामंजूर किया जाता है । अधिक से अधिक यह परिदृश्य होगा कि ऐसे खंडन दावे को मंजूर किया जाए किन्तु उस परिस्थिति में संहिता की धारा 14(1)(क) प्रभावी हो जाएगी और निगमित ऋणी के विरुद्ध डिक्री निष्पादनीय नहीं होगी । तथापि, ऐसी किसी भी अधिसंभाव्यता की आशंका में अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाही को स्थगित नहीं रखा जा सकता, विशेष रूप से तब जब ऐसी खंडन दावे को विद्वान् मध्यस्थ द्वारा अस्वीकृत किया जा चुका है और निगमित देनदार का दावा मान्य ठहराया जा चुका है ।

14. इसलिए, निम्नलिखित कारणोंवश मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि वर्तमान कार्यवाही धारा 14(1)(क) के अवरोध द्वारा बाधित नहीं होगी अर्थात् (क) "कार्यवाहियों" का आशय "समस्त कार्यवाहियों" से नहीं होता, (ख) संहिता की धारा 14(1)(ख) के अधीन ऋणस्थगन निगमित देनदार की आस्तियों के विरुद्ध ऋण वसूली कार्रवाई को प्रतिषिद्ध किए जाने के लिए आशयित है, (ग) माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्रवाइयों का जारी रहना, जो निगमित देनदार की आस्तियों को नुकसान पहुंचाने वाली, न्यून या विलुप्त करने वाली या विपरीत रूप से प्रभावित करने वाली नहीं हैं, संहिता की धारा 14(1)(क) के अधीन प्रतिषिद्ध नहीं है, (घ) शब्द "सम्मिलित" शब्द "कार्यवाहियों" की परिधि को स्पष्ट करने वाला है, (ङ)

---

[1] 2017 एस. सी. सी. आनलाइन एस. सी. 1025.

शब्द "कार्यवाहियों" उस कार्यवाही की प्रकृति को निर्बंधित करने वाला होगा जो उसका अनुसरण करता है अर्थात् निगमित देनदार की आस्तियों के विरुद्ध ऋण वसूली कार्यवाही, (च) संहिता की धारा 33(5) में प्रयुक्त व्यापक वाक्यांश "निगमित देनदार द्वारा या उसके विरुद्ध" के विरुद्ध धारा 14(1)(क) में संकुचित शब्दों "निगमित देनदार के विरुद्ध" का प्रयोग निर्बंधित अर्थ और उपयोजन के लिए आशयित है, (छ) माध्यस्थम् अधिनियम धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों (अर्थात् पंचाट का प्रवर्तन और निष्पादन) "अर्थात् पंचाट के विरुद्ध आक्षेप" और धारा 36 के अधीन कार्यवाहियों के मध्य विभेद करता है । धारा 34 के अधीन कार्यवाहियां किसी पंचाट के निष्पादन के पूर्व की कार्यवाहियां होती हैं । केवल धारा 34 के अधीन फाइल किए गए आक्षेपों के विनिर्धारण के पश्चात् ही कोई भी पक्ष पंचाट को निष्पादित किए जाने की कार्यवाही कर सकता है और यदि आक्षेपों को निगमित देनदार के विरुद्ध निर्णीत किया जाता है तो निगमित देनदार के विरुद्ध उसका प्रवर्तन निश्चित रूप से धारा 14(1)(क) के अधीन ऋणस्थगन द्वारा आच्छादित होगा ।

15. इसलिए, इन कार्यवाहियों के जारी रहने से अधिनियम की धारा 34 के अधीन विवाद्यकों के विनिर्धारण की ईप्सा करने वाले किसी भी पक्ष के अधिकारों को कोई क्षति कारित नहीं होगी और संहिता का उद्देश्य संरक्षित रहेगा न कि विफल होगा । तद्नुसार, हमारे समक्ष उठाए गए प्रश्न का उत्तर दिया जाता है ।

16. आक्षेप का जो दूसरा भाग है, वह यह है कि क्या यदि एक बार ऋणस्थगन घोषित कर दिया जाता है, तो फाइल किए गए आक्षेपों के प्रकाश में कार्यवाही के जारी रहने का विनिश्चय केवल समाधान वृत्तिक द्वारा लिया जा सकता है, चूंकि संहिता की धारा 17 के अनुसार अन्तरिम समाधान वृत्तिक की नियुक्ति की तारीख से निगमित देनदार के मामलों का प्रबंधन अन्तरिम समाधान वृत्तिक में निहित हो जाता है और इसलिए, इस मामले की विलक्षण परिस्थितियों को देखते हुए, जहां आक्षेपक द्वारा खंडन दावा फाइल किया गया, यद्यपि उसको अस्वीकृत कर दिया गया, यह उचित होगा कि अन्तरिम समाधान वृत्तिक को इन कार्यवाहियों की जानकारी दी जाए और वह इन कार्यवाहियों को जारी रखे जाने की बाबत सहमति प्रदान करे ।

17. अतः, अन्तरिम समाधान वृत्तिक की सहमति/अनुज्ञा अभिप्राप्त की जाए और उसको इस न्यायालय के समक्ष आज से चार सप्ताह के भीतर

फाइल किया जाए ।

18. मामले को अग्रिम आदेशों के लिए तारीख 22 मार्च, 2018 को सूचिबद्ध किया जाए ।

तद्नुसार याचिका का निपटारा किया गया ।

अवि.

(2018) 2 सि. नि. प. 216 पंजाब-हरियाणा

अमर चंद शर्मा और एक अन्य

बनाम

पीठासीन अधिकारी-सहयुक्त-जिला मजिस्ट्रेट-सहयुक्त-चैयरमैन और अन्य

तारीख 6 सितंबर, 2017

न्यायमूर्ति राकेश कुमार जैन

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 (2007 का 56) – धारा 4, 5 और 23 [सपठित हरियाणा माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण नियम, 2009 का नियम 24] – वारिसों द्वारा भरणपोषण की जिम्मेदारी न निभाना – माता-पिता द्वारा मकान से अपनी वधू की बेदखली के लिए अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किया जाना – ग्राह्यता – बेदखली के लिए आवेदन केवल जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है न कि अधिकरण द्वारा – अतः भरणपोषण अधिकरण द्वारा पारित बेदखली का आदेश अधिकारिता रहित होने के कारण अपास्त किए जाने योग्य है ।

यह याचिका अध्यक्ष, अपील अधिकरण-सहयुक्त-जिला मजिस्ट्रेट, अम्बाला द्वारा तारीख 16 मई, 2017 को पारित उस आदेश को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है जिसके द्वारा पीठासीन अधिकारी-सहयुक्त-उपखंड मजिस्ट्रेट, भरणपोषण अधिकरण, अम्बाला द्वारा तारीख 3 अक्तूबर, 2016 को पारित आदेश को अपास्त किया गया है और जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं 3 श्रीमती सोनल शर्मा को प्रश्नगत मकान से बेदखल करने का

आदेश किया गया है । संक्षेप में यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 का विवाह प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ हुआ था । याची प्रत्यर्थी सं. 2 के माता-पिता हैं जिन्होंने माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 4, 5 और 23 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था । भरणपोषण अधिकरण ने प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 को यह निदेश करते हुए उक्त आवेदन मंजूर किया था कि वे एक मास की अवधि के भीतर प्रश्नगत मकान का प्रथम तल खाली करें । प्रत्यर्थी सं. 3 ने उक्त आदेश से व्यथित होकर अपील अधिकरण-सहयुक्त-जिला मजिस्ट्रेट अम्बाला के समक्ष अपील फाइल की जो तारीख 16 मई, 2017 के आक्षेपित आदेश द्वारा मंजूर की गई है । अतः वर्तमान याचिका फाइल की गई । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या बेदखली के लिए कोई आवेदन अधिकरण के समक्ष अथवा जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष ग्रहण किए जाने योग्य है । अधिनियम की स्कीम अधिनियम की धारा 2 (ञ) के अधीन अधिकरण की परिभाषा उपबंधित करती है जिससे अधिनियम की धारा 7 के अधीन गठित भरणपोषण अधिकरण अभिप्रेत है । अधिनियम की धारा 7 ऐसे अधिकरणों के गठन के लिए उपबंध करती है जिसका ऐसा कोई पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष) होगा जो राज्य के उपखंड अधिकारी से नीचे के रैंक का न हो । अधिनियम को विभिन्न अध्यायों में विभाजित किया गया है । अध्याय 2 माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के बारे में उपबंध करता है, अध्याय 3 वृद्धावस्था गृहों की स्थापना के बारे में उपबंध करता है, अध्याय 4 वरिष्ठ नागरिकों की चिकित्सीय देखभाल के लिए उपबंध करता है और अध्याय 5 वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति के बारे में उपबंध करता है । यदि कोई वरिष्ठ नागरिक अपने बच्चों से जिनको अधिनियम की धारा 2(क) के अधीन परिभाषित किया गया है और जिनमें पुत्र, पुत्री, पौत्र और पौत्री सम्मिलित हैं किन्तु जिसमें कोई अवयस्क बालक सम्मिलित नहीं है, भरणपोषण की मांग करते हैं तो वे अधिनियम की धारा 4 के अधीन आवेदन फाइल कर सकते हैं जिसका विनिश्चय भरणपोषण अधिकरण द्वारा अधिनियम के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार किया जाएगा । प्रक्रिया का उस रीति में अनुसरण किया जाएगा जो धारा 8 के अधीन उपबंधित है और अधिनियम की धारा 9 के निबंधनों में आदेश पारित किया जाएगा । उक्त आदेश का प्रवर्तन

अधिनियम की धारा 11 के अधीन किया जाएगा और यदि वरिष्ठ नागरिक अधिकरण द्वारा पारित आदेश से संतुष्ट नहीं है तो वह अधिनियम की धारा 16 के निबंधनों में अपील फाइल कर सकता है । जहां तक वरिष्ठ नागरिक के जीवन और संपत्ति का संबंध है, धारा 22(2) यह उपबंध करती है कि "राज्य सरकार वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति को संरक्षण प्रदान करने के लिए एक व्यापक कार्य योजना विहित करेगी ।" अधिनियम की धारा 23 ऐसी संपत्ति के बारे में उपबंध करती है जो किसी वरिष्ठ नागरिक द्वारा ऐसी शर्त के साथ अंतरित की जाएगी कि अंतरिती अंतरण करने वाले की आधारभूत जरूरतों और आधारभूत शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करेगा और यदि ऐसा अंतरिती ऐसी सुविधाओं और शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने से इनकार करता है या विफल रहता है तो अंतरण करने वाला व्यक्ति उक्त अंतरण को शून्य घोषित करने के प्रयोजन के लिए अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल कर सकता है । हरियाणा सरकार ने धारा 22(2) के क्रियान्वयन के लिए नियम विरचित किए हैं जिन्हें हरियाणा माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण नियम, 2009 कहा जाता है । उक्त नियमों का नियम 24 कार्य योजना के लिए उपबंध करता है । हरियाण राज्य के लिए कार्य योजना तारीख 26 मई, 2015 को प्रकाशित की गई थी जिसका खंड 2 (i) वरिष्ठ नागरिकों/माता-पिता की संपत्ति/उनसे संबंधित/आवासीय भवन उनके द्वारा अधिभोग किए जाने वाले आवासीय भवन से बेदखली के लिए प्रक्रिया के बारे में उपबंध करता है । इस उपबंध के अनुसार यदि विभिन्न विभागों/गैर सरकारी संगठनों/सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति के संबंध में कोई शिकायत प्राप्त होती है तो वरिष्ठ नागरिकों के लिए दूरभाष-सहायता द्वारा और स्वतः जिला मजिस्ट्रेट द्वारा उसे आगे कार्रवाई के लिए संबंधित जिले के जिला मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किया जाएगा । जिला मजिस्ट्रेट अव्यवहित रूप से ऐसी शिकायत/आवेदन को संपत्ति के हकदारी के सत्यापन के लिए राजस्व विभाग/संबंधित तहसीलदार/स्थल निरीक्षण और मामले के तथ्यों के लिए ऐसी शिकायत /आवेदन की प्राप्ति की तारीख से 15 दिनों के भीतर संबंधित उपखंड मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करेगा । उपखंड मजिस्ट्रेट अव्यवहित रूप से अपनी रिपोर्ट शिकायत/ आवेदन की प्राप्ति की तारीख से 21 दिन के भीतर अंतिम आदेशों के लिए संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत करेगा । इसके पश्चात् यदि जिला मजिस्ट्रेट की यह राय है कि किसी वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के विधिक वारिस अर्थात् पुत्र

या पुत्री का अधिनियम में यथा परिभाषित किसी संपत्ति पर अप्राधिकृत कब्जा है तो वह ऐसे व्यक्ति को विहित रीति में बेदखल करेगा । प्रत्यर्थी सं. 3 ने जो वैयक्तिक रूप से उपस्थित हुई है, यह दलील दी है कि प्रथमतः किसी आवेदन पर आदेश केवल जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया जा सकता है और द्वितीयतः केवल वारिसों के विरुद्ध पारित किया जा सकता है । उसने यह दलील दी है कि वह याचियों की वारिस नहीं है क्योंकि वह उनकी वधू है । तथ्यतः उसका पति वारिस है जो जीवित है । उसने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 8 का निर्देश किया है जिसमें दी गई तालिका में ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख है जिन्हें किसी हिन्दू पुरुष की जिसकी निर्वसीयती मृत्यु हुई है, संपत्ति उत्तराधिकार में मिलेगी । इस तालिका में वधू का कहीं भी उल्लेख नहीं है । तथापि, एक विधवा वधू वारिस के अन्तर्गत आती है । यह भी दलील दी गई है कि चूंकि अधिकारिता केवल अधिकरण में निहित है जो पक्षकारों के बीच भरणपोषण से संबंधित विवाद को विनिश्चित कर सकता है अथवा किसी अंतरिती द्वारा असम्यक् प्रभाव, बल प्रयोग या कपट द्वारा प्राप्त अंतरण विलेख को शून्य घोषित करने के प्रयोजन के लिए अधिनियम की धारा 23 के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर विचार कर सकता है यदि अंतरिती द्वारा वचन दी गई आधारभूत सुविधाओं या शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जाता है । न्यायालय के सुविचारित मतानुसार बेदखली ईप्सित करने के लिए फाइल किया गया आवेदन केवल जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है न कि अधिकरण द्वारा । अतः इस मामले में विरचित प्रश्न प्रतिवादी सं. 3 के हक में और याचियों के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है । तद्नुसार यह मुकदमेदारी आरंभ से ही अधिकारिता विहीन थी और याचियों द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 के विरुद्ध बेदखली की ईप्सा करने वाला आवेदन भी अधिकरण के समक्ष ग्राह्य नहीं था । (पैरा 4, 5 और 6)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की सिविल रिट याचिका सं. 14752.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री सिद्धार्थ गुप्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री अशोक मुथरेजा, डी. ए. जी. हरियाणा

न्यायमूर्ति राकेश कुमार जैन – यह याचिका अध्यक्ष, अपील

अधिकरण-सहयुक्त-जिला मजिस्ट्रेट, अम्बाला द्वारा तारीख 16 मई, 2017 को पारित उस आदेश को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है जिसके द्वारा पीठासीन अधिकारी-सहयुक्त-उपखंड मजिस्ट्रेट, भरणपोषण अधिकरण, अम्बाला द्वारा तारीख 3 अक्तूबर, 2016 को पारित आदेश को अपास्त किया गया है और जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं 3 श्रीमती सोनल शर्मा को प्रश्नगत मकान से बेदखल करने का आदेश किया गया है ।

2. संक्षेप में यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 का विवाह प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ हुआ था । याची प्रत्यर्थी सं. 2 के माता-पिता हैं जिन्होंने माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण अधिनियम, 2007 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 4, 5 और 23 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था । भरणपोषण अधिकरण ने प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 को यह निदेश करते हुए उक्त आवेदन मंजूर किया था कि वे एक मास की अवधि के भीतर प्रश्नगत मकान का प्रथम तल खाली करें । प्रत्यर्थी सं. 3 ने उक्त आदेश से व्यथित होकर अपील अधिकरण-सहयुक्त-जिला मजिस्ट्रेट, अम्बाला के समक्ष अपील फाइल की जो तारीख 16 मई, 2017 के आक्षेपित आदेश द्वारा मंजूर की गई है ।

3. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि आक्षेपित आदेश पूर्णतया अवैध है इसलिए अपास्त किए जाने योग्य है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी सं. 3 ने वैयक्तिक रूप से उपस्थित होकर यह दलील दी कि अपील अधिकरण-सहयुक्त-जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष फाइल किया गया आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ।

4. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों और प्रत्यर्थी सं. 3 को वैयक्तिक रूप से सुना और उनकी सहायता से उपलब्ध अभिलेख का परिशीलन किया । वर्तमान मामले में यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या बेदखली के लिए कोई आवेदन अधिकरण के समक्ष अथवा जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष ग्रहण किए जाने योग्य है । अधिनियम की स्कीम अधिनियम की धारा 2 (ञ) के अधीन अधिकरण की परिभाषा उपबंधित करती है जिससे अधिनियम की धारा 7 के अधीन गठित भरणपोषण अधिकरण अभिप्रेत है । अधिनियम की धारा 7 ऐसे अधिकरणों के गठन के लिए उपबंध करती है जिसका ऐसा कोई पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष) होगा जो राज्य के उपखंड अधिकारी से नीचे के रैंक का न हो । अधिनियम को विभिन्न अध्यायों में विभाजित किया गया है । अध्याय 2 माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के

बारे में उपबंध करता है, अध्याय 3 वृद्धावस्था गृहों की स्थापना के बारे में उपबंध करता है, अध्याय 4 वरिष्ठ नागरिकों की चिकित्सीय देखभाल के लिए उपबंध करता है और अध्याय 5 वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति के बारे में उपबंध करता है । यदि कोई वरिष्ठ नागरिक अपने बच्चों से जिनको अधिनियम की धारा 2(क) के अधीन परिभाषित किया गया है और जिनमें पुत्र, पुत्री, पौत्र और पौत्री सम्मिलित हैं किन्तु जिसमें कोई अवयस्क बालक सम्मिलित नहीं है, भरणपोषण की मांग करते हैं तो वे अधिनियम की धारा 4 के अधीन आवेदन फाइल कर सकते हैं जिसका विनिश्चय भरणपोषण अधिकरण द्वारा अधिनियम के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार किया जाएगा । प्रक्रिया का उस रीति में अनुसरण किया जाएगा जो धारा 8 के अधीन उपबंधित है और अधिनियम की धारा 9 के निबंधनों में आदेश पारित किया जाएगा । उक्त आदेश का प्रवर्तन अधिनियम की धारा 11 के अधीन किया जाएगा और यदि वरिष्ठ नागरिक अधिकरण द्वारा पारित आदेश से संतुष्ट नहीं है तो वह अधिनियम की धारा 16 के निबंधनों में अपील फाइल कर सकता है । जहां तक वरिष्ठ नागरिक के जीवन और संपत्ति का संबंध है, धारा 22(2) यह उपबंध करती है कि "राज्य सरकार वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति को संरक्षण प्रदान करने के लिए एक व्यापक कार्य योजना विहित करेगी ।" अधिनियम की धारा 23 ऐसी संपत्ति के बारे में उपबंध करती है जो किसी वरिष्ठ नागरिक द्वारा ऐसी शर्त के साथ अंतरित की जाएगी कि अंतरिती अंतरण करने वाले की आधारभूत जरूरतों और आधारभूत शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करेगा और यदि ऐसा अंतरिती ऐसी सुविधाओं और शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने से इनकार करता है या विफल रहता है तो अंतरण करने वाला व्यक्ति उक्त अंतरण को शून्य घोषित करने के प्रयोजन के लिए अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल कर सकता है । हरियाणा सरकार ने धारा 22(2) के क्रियान्वयन के लिए नियम विरचित किए हैं जिन्हें हरियाणा माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण और कल्याण नियम, 2009 (जिन्हें आगे संक्षेप में "नियम" कहा गया है) कहा जाता है । उक्त नियमों का नियम 24 कार्य योजना के लिए उपबंध करता है । हरियाण राज्य के लिए कार्य योजना तारीख 26 मई, 2015 को प्रकाशित की गई थी जिसका खंड 2(i) वरिष्ठ नागरिकों/माता-पिता की संपत्ति/उनसे संबंधित/आवासीय भवन उनके द्वारा अधिभोग किए जाने वाले आवासीय भवन से बेदखली के लिए प्रक्रिया के बारे में उपबंध करता है । इस उपबंध के अनुसार यदि विभिन्न विभागों/गैर सरकारी संगठनों/सामाजिक

कार्यकर्ताओं द्वारा वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति के संबंध में कोई शिकायत प्राप्त होती है तो वरिष्ठ नागरिकों के लिए दूरभाष-सहायता द्वारा और स्वतः जिला मजिस्ट्रेट द्वारा उसे आगे कार्रवाई के लिए संबंधित जिले के जिला मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किया जाएगा । जिला मजिस्ट्रेट अव्यवहित रूप से ऐसी शिकायत/आवेदन को संपत्ति के हकदारी के सत्यापन के लिए राजस्व विभाग/संबंधित तहसीलदार/स्थल निरीक्षण और मामले के तथ्यों के लिए ऐसी शिकायत /आवेदन की प्राप्ति की तारीख से 15 दिनों के भीतर संबंधित उपखंड मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करेगा । उपखंड मजिस्ट्रेट अव्यवहित रूप से अपनी रिपोर्ट शिकायत/आवेदन की प्राप्ति की तारीख से 21 दिन के भीतर अंतिम आदेशों के लिए संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत करेगा । इसके पश्चात् यदि जिला मजिस्ट्रेट की यह राय है कि किसी वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के विधिक वारिस अर्थात् पुत्र या पुत्री का अधिनियम में यथा परिभाषित किसी संपत्ति पर अप्राधिकृत कब्जा है तो वह ऐसे व्यक्ति को विहित रीति में बेदखल करेगा ।

5. प्रत्यर्थी सं. 3 ने जो वैयक्तिक रूप से उपस्थित हुई है, यह दलील दी है कि प्रथमतः किसी आवेदन पर आदेश केवल जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया जा सकता है और द्वितीयतः केवल वारिसों के विरुद्ध पारित किया जा सकता है । उसने यह दलील दी है कि वह याचियों की वारिस नहीं है क्योंकि वह उनकी वधू है । तथ्यतः उसका पति वारिस है जो जीवित है । उसने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 8 का निर्देश किया है जिसमें दी गई तालिका में ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख है जिन्हें किसी हिन्दू पुरुष की जिसकी निर्वसीयती मृत्यु हुई है, संपत्ति उत्तराधिकार में मिलेगी । इस तालिका में वधू का कहीं भी उल्लेख नहीं है । तथापि, एक विधवा वधू वारिस के अन्तर्गत आती है । यह भी दलील दी गई है कि चूंकि अधिकारिता केवल अधिकरण में निहित है जो पक्षकारों के बीच भरणपोषण से संबंधित विवाद को विनिश्चित कर सकता है अथवा किसी अंतरिती द्वारा असम्यक् प्रभाव, बल प्रयोग या कपट द्वारा प्राप्त अंतरण विलेख को शून्य घोषित करने के प्रयोजन के लिए अधिनियम की धारा 23 के अधीन फाइल किए गए आवेदन विचार कर सकता है यदि अंतरिती द्वारा वचन दी गई आधारभूत सुविधाओं या शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जाता है ।

6. मेरे सुविचारित मतानुसार बेदखली ईप्सित करने के लिए फाइल किया गया आवेदन केवल जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विनिश्चित किया जा

सकता है न कि अधिकरण द्वारा । अतः इस मामले में विरचित प्रश्न प्रतिवादी सं. 3 के हक में और याचियों के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है । तद्नुसार यह मुकदमेदारी आरंभ से ही अधिकारिता विहीन थी और याचियों द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 के विरुद्ध बेदखली की ईप्सा करने वाला आवेदन भी अधिकरण के समक्ष ग्राह्य नहीं था ।

7. याचिका खारिज की जाती है ।

याचिका खारिज की गई ।

मह.

(2018) 2 सि. नि. प. 223 **पटना**

अवधेश कुमार सिंह और एक अन्य

बनाम

श्याम नारायण झा और एक अन्य

तारीख 15 दिसंबर, 2017

न्यायमूर्ति हेमन्त कुमार श्रीवास्तव

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 53क [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) की धारा 17(1क), 2001 के संशोधन अधिनियम सं. 48 द्वारा यथासंशोधित] – अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-करार – संशोधन से पूर्व रजिस्ट्रीकरण आवश्यक न होना – अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-करार संशोधन से पूर्व निष्पादित किया जाना – विक्रय-करार में विवादित भूमि का कब्जा क्रेता/अंतरिती को न दिया जाना – दस्तावेज को अधिनियम की धारा 17(1क) लागू नहीं होती ।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 16 और 20(ग) – विक्रय-करार – विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – क्रेता द्वारा विक्रय-करार के अपने भाग के अनुपालन के लिए तैयारी और इच्छा साबित किया जाना – क्रेता विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए अनुतोष पाने का हकदार है ।

वादी-अपीलार्थियों ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध इस अनुतोष की ईप्सा करते हुए संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए 1999 का हक

वाद सं. 02 फाइल किया था कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे वादपत्र की अनुसूची ए में उपवर्णित वाद भूमि के संबंध में वादी-अपीलार्थियों के हक में आत्यंतिक विक्रय विलेख निष्पादित करें और जिससे विफल रहने पर वादी-अपीलार्थी न्यायालय की प्रक्रिया के द्वारा विक्रय विलेख निष्पादित कराने के लिए स्वतंत्र होंगे और इसके अतिरिक्त उन्होंने इस अनुतोष की ईप्सा की कि उन्हें वाद भूमि पर कब्जा भी दिलाया जाए । वादी-अपीलार्थियों द्वारा यह अपील 1999 के हक वाद सं. 02 में उप न्यायाधीश 3, कटियार द्वारा क्रमशः तारीख 4 फरवरी, 2012 और तारीख 24 फरवरी, 2012 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने विरोध के आधार पर तथापि, खर्चों के बिना उपर्युक्त वाद खारिज किया है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 को 2001 के अधिनियम सं. 48 द्वारा संशोधित किया गया है और 2001 के अधिनियम सं. 48 द्वारा एक धारा अर्थात् धारा 17(1क) को अंतःस्थापित किया गया है और उपर्युक्त उपबंध में यह कहा गया है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क के प्रयोजन के लिए किसी स्थावर संपत्ति को प्रतिफल के लिए अंतरण करने हेतु संविदाओं का उल्लेख करने वाले दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत किए जाएंगे यदि वे रजिस्ट्रीकरण और अन्य संबंधित विधियां (संशोधन) अधिनियम, 2001 के आरंभ होने पर या उसके पश्चात् निष्पादित किए गए हैं और यदि ऐसे दस्तावेजों को ऐसे प्रारंभ पर या उसके पश्चात् रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया गया है तो उनका उक्त धारा 53क के प्रयोजनों के लिए कोई प्रभाव नहीं होगा । उपर्युक्त उपबंध में विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा गया है कि किसी स्थावर संपति को प्रतिफल के लिए अंतरण करने हेतु संविदाओं का उल्लेख करने वाले दस्तावेज संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53ग के प्रयोजन के लिए रजिस्ट्रीकृत किए जाएंगे यदि ऐसे दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण और अन्य संबंधित विधियां (संशोधन) अधिनियम, 2001 के आरंभ पर या उसके पश्चात् निष्पादित किए गए हैं । यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त उपबंध संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क से संबंधित हैं और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क को लागू करने के लिए संपत्ति का कब्जा अंतरिती के पास होना चाहिए और इसलिए रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 (1क) वर्तमान मामले को लागू नहीं होती है । स्वीकृततः विवादित भूमि का कब्जा वादी-

अपीलार्थियों को नहीं दिया गया है । इसके अतिरिक्त वादी-अपीलार्थियों के अभिवचनों से यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में विक्रय करार वर्ष 1995 में निष्पादित किया गया था जबकि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 में संशोधन वर्ष 2001 में किया गया था । इसके अतिरिक्त इस धारा में एक स्पष्टीकरण संबद्ध किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि ऐसे दस्तावेज के जो स्थावर संपत्ति के विक्रय की संविदा के प्रभाव के लिए तात्पर्यित या प्रवृत्त है, बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि मात्र इस तथ्य के कारण उसका रजिस्ट्रीकरण कभी भी आवश्यक है क्योंकि ऐसे दस्तावेज में किसी अग्रिम धन के संदाय का या विक्रय धन के संपूर्ण या किसी भाग का उल्लेख किया गया है । अतः उपर्युक्त स्पष्टीकरण संपूर्ण विवाद को स्पष्ट कर देता है इसलिए न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई कठिनाई नहीं है कि प्रदर्श-1 के रजिस्ट्रीकरण की कोई आवश्यकता नहीं थी और इसलिए विद्वान् निचले न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि रजिस्ट्रीकरण के अभाव में प्रदर्श-1 का कोई महत्व नहीं है । (पैरा 10, 11 और 12)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की प्रथम अपील सं. 69.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री अंशुमन जयपुरियार

प्रत्यर्थियों की ओर से —

न्यायमूर्ति हेमंत कुमार श्रीवास्तव – वादी-अपीलार्थियों द्वारा यह अपील 1999 के हक वाद सं. 02 में उप न्यायाधीश 3, कटियार द्वारा क्रमश: तारीख 4 फरवरी, 2012 और तारीख 24 फरवरी, 2012 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने विरोध के आधार पर तथापि, खर्चों के बिना उपर्युक्त वाद खारिज किया है ।

2. वादी-अपीलार्थियों ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध इस अनुतोष की ईप्सा करते हुए संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए 1999 का हक वाद सं. 02 फाइल किया था कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे वादपत्र की अनुसूची ए में उपवर्णित वाद भूमि के संबंध में वादी-अपीलार्थियों के हक में आत्यंतिक विक्रय विलेख निष्पादित करें और जिससे विफल रहने पर वादी-अपीलार्थी न्यायालय की प्रक्रिया के द्वारा

विक्रय विलेख निष्पादित कराने के लिए स्वतंत्र होंगे और इसके अतिरिक्त उन्होंने इस अनुतोष की ईप्सा की कि उन्हें वाद भूमि पर कब्जा भी दिलाया जाए ।

3. संक्षेप में वादियों का पक्षकथन जो अभिवचनों से प्रतीत होता है, यह है कि प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 के अनुरोध पर वादी सं. 1 अपीलार्थी सं. 1 ने तारीख 8 अक्तूबर, 1995 को प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 को साफ्ट ड्रिंक की डीलरशिप लेने के लिए 2 लाख 36 हजार 400 रुपए दिए थे और प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 ने इस संबंध में खेरता रसीद जारी की थी । इसके पश्चात् वादी सं. 1 अपीलार्थी सं. 1 ने प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 के आश्वासन पर तारीख 1 नवंबर, 1995 को एंकर एडीबल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के हक में सेन्ट्रल बैंक, कटियार में 2 लाख रुपए का बैंकर चैक जमा किया था । समान रूप में वादी सं. 2 अपीलार्थी सं. 2 ने प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 के कहने पर साफ्ट ड्रिंक की डीलरशिप लेने के लिए एक लाख 99 हजार 200/- रुपए का बैंकर चैक जमा किया था । तथापि, बाद में वादी/अपीलार्थियों को उपर्युक्त कंपनी की विश्वसनीतया पर संदेह हुआ और इसलिए प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 से उक्त अग्रिम धनराशि वापस करने के लिए कहा गया था तथापि, प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 ने अग्रिम धनराशि वापस करने में अपनी असमर्थता जताई क्योंकि कंपनी के नियमों के अनुसार अग्रिम धनराशि 3 या 4 महीनों के पश्चात् वापस की जाती है । तथापि, प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों ने ऊपर अभिकथित देयों को स्वीकार किया और वे संयुक्त रूप से तारीख 15 जनवरी, 1996 को ग्राम डालान मोहल्ला हैदरगंज स्थित खाता सं. 1394 में उल्लिखित भूखंड सं. 2577 के संबंध में विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए सहमत हुए और तद्नुसार उन्होंने अरजिस्ट्रीकृत विक्रय करार निष्पादित किया । तथापि, विक्रय करार के निष्पादन के समय पक्षकार इस बात के लिए भी सहमत हुए थे कि प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 वादी अपीलार्थियों से उनके द्वारा कंपनी में जमा की गई धनराशि को वापस लेने के लिए एक प्राधिकार पत्र प्राप्त करेगा । वादी-अपीलार्थियों ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों से आत्यंतिक विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए अनेकों बार अनुरोध किया किन्तु वे टालते रहे और इसके पश्चात् वादी-अपीलार्थियों ने तारीख 28 नवंबर, 1998 और तारीख 7 दिसंबर, 1998 को प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 को रजिस्ट्रीकृत सूचनाएं भेजीं किन्तु उक्त सूचनाओं की प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 पर तामील नहीं हो सकी क्योंकि प्रतिवादी-

प्रत्यर्थी किसी अज्ञात स्थान पर चले गए थे । तथापि, वादी-अपीलार्थी संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक थे और वे अभी भी संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए इच्छुक और तैयार हैं ।

4. निचले न्यायालय के अभिलेख के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों को सूचनाएं भेजी गई थीं किन्तु उक्त सूचनाओं की उन पर तामील नहीं हो सकी और तत्पश्चात् समाचारपत्र में सूचनाएं प्रकाशित की गई थीं और निचले न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों-प्रत्यर्थियों पर उक्त सूचनाओं की तामील मानी गई थी और इसके पश्चात् विचारण न्यायालय ने मामले में एकपक्षीय कार्यवाही करते हुए वादी-अपीलार्थियों का साक्ष्य अभिलिखित किया और मुख्यतया इस आधार पर वादी-अपीलार्थियों का वाद खारिज करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया कि तथाकथित विक्रय करार रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज नहीं था और उपर्युक्त दस्तावेज की सत्यता संदेहास्पद थी । विद्वान् निचले न्यायालय ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि वादी-अपीलार्थी वाद भूमि के संबंध में प्रतिवादी- प्रत्यर्थियों के अधिकार और हक को साबित नहीं कर सके हैं ।

5. अभिलेख के परिशीलन से यह भी प्रतीत होता है कि वादी-अपीलार्थियों ने कुल 5 साक्षियों की परीक्षा कराई और तारीख 25 दिसंबर, 1995 के तथाकथित विक्रय करार को प्रदर्श-ए के रूप में प्रदर्शित किया । प्रदर्श-1 पर पी. डब्ल्यू. 2 के हस्ताक्षर प्रदर्श-1/ए के रूप में हैं । प्रदर्श 1 पर पी. डब्ल्यू. 3 के हस्ताक्षर प्रदर्श-1/बी. के रूप में हैं । प्रदर्श-1 पर पी. डब्ल्यू. 4 के हस्ताक्षर प्रदर्श-1/सी के रूप में हैं और प्रदर्श-1 पर पी. डब्ल्यू. 5 के हस्ताक्षर प्रदर्श-1/डी के रूप में हैं ।

6. वादी-अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील देते हुए आक्षेपित निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने संपत्ति अंतरण अधिनियम तथा रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के उपबंधों का गलत निर्वचन करते हुए त्रुटिपूर्ण रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि रजिस्ट्रीकरण के अभाव में प्रदर्श-1 का कोई विधिक मूल्य नहीं है । उन्होंने यह भी दलील दी कि विद्वान् निचले न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का भी गलत मूल्यांकन करते हुए इस आधार पर वादी-अपीलार्थियों के दावे पर संदेह किया है कि वादी-अपीलार्थियों ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध कोई दांडिक मामला दर्ज कराने की कार्रवाई

नहीं की है । उन्होंने यह भी दलील दी कि विद्वान् निचले न्यायालय ने तुच्छ आधार पर वादी-अपीलार्थियों की ओर से परीक्षा किए गए साक्षियों की विश्वसनीयता पर संदेह किया है और निचला न्यायालय इस तथ्य की अवेक्षा करने में विफल रहा है कि वादी के साक्षियों ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों द्वारा जारी प्रदर्श-1 के निष्पादन को स्पष्ट रूप से साबित कर दिया है ।

7. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि इस न्यायालय ने भी प्रत्यर्थियों को अपील में सूचना जारी की थी किन्तु उन पर अपील सूचना की तामील नहीं हो सकी और तत्पश्चात् वादी-अपीलार्थियों के अनुरोध पर दैनिक समाचारपत्र में अपील-सूचना प्रकाशित की गई थी और इसके पश्चात् अपील सूचना की तामील मान ली गई थी और यह अपील सुनी गई थी । यहां यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि इस अपील की सुनवाई के समय प्रत्यर्थियों की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ ।

8. आक्षेपित निर्णय के परिशीलन मात्र से यह प्रतीत होता है कि निचले न्यायालय ने 1999 के हक वाद सं. 02 के निपटान के लिए दो प्रश्न विरचित किए थे । निचले न्यायालय द्वारा विरचित प्रश्न ये हैं कि क्या प्रदर्श-1 विधि की दृष्टि में केई महत्व रखता है और निचले न्यायालय द्वारा विरचित किया गया दूसरा प्रश्न यह है कि क्या विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 16(ग) के अधीन वादी संविदा को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक हैं/ या थे ।

9. विद्वान् निचले न्यायालय ने प्रथम प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि प्रदर्श-1 का विधि की दृष्टि में कोई महत्व नहीं है क्योंकि यह एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज नहीं है और संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 लागू होती है तथापि, मेरे मतानुसार संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 वर्तमान मामले में किसी भी प्रकार से लागू नहीं होती है क्योंकि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 स्थावर संपत्ति के विक्रय से संबंधित है और वर्तमान मामले में वादियों का दावा विक्रय के करार पर आधारित है ।

10. रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 को 2001 के अधिनियम सं. 48 द्वारा संशोधित किया गया है और 2001 के अधिनियम सं. 48 द्वारा एक धारा अर्थात् धारा 17(1क) को अंतःस्थापित किया गया है और उपर्युक्त उपबंध में यह कहा गया है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क के प्रयोजन के लिए किसी स्थावर संपत्ति को प्रतिफल के लिए

अंतरण करने हेतु संविदाओं का उल्लेख करने वाले दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत किए जाएंगे यदि वे रजिस्ट्रीकरण और अन्य संबंधित विधियां (संशोधन) अधिनियम, 2001 के आरंभ होने पर या उसके पश्चात् निष्पादित किए गए हैं और यदि ऐसे दस्तावेजों को ऐसे प्रारंभ पर या उसके पश्चात् रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया गया है तो उनका उक्त धारा 53क के प्रयोजनों के लिए कोई प्रभाव नहीं होगा ।

11. उपर्युक्त उपबंध में विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा गया है कि किसी स्थावर संपति को प्रतिफल के लिए अंतरण करने हेतु संविदाओं का उल्लेख करने वाले दस्तावेज संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53ग के प्रयोजन के लिए रजिस्ट्रीकृत किए जाएंगे यदि ऐसे दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण और अन्य संबंधित विधियां (संशोधन) अधिनियम, 2001 के आरंभ पर या उसके पश्चात् निष्पादित किए गए हैं ।

12. यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त उपबंध संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क से संबंधित हैं और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क को लागू करने के लिए संपत्ति का क़ब्जा अंतरिती के पास होना चाहिए और इसलिए रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 (1क) वर्तमान मामले को लागू नहीं होती है । स्वीकृतत: विवादित भूमि का कब्जा वादी-अपीलार्थियों को नहीं दिया गया है । इसके अतिरिक्त वादी-अपीलार्थियों के अभिवचनों से यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में विक्रय करार वर्ष 1995 में निष्पादित किया गया था जबकि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 में संशोधन वर्ष 2001 में किया गया था । इसके अतिरिक्त इस धारा में एक स्पष्टीकरण संबद्ध किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि ऐसे दस्तावेज के जो स्थावर संपत्ति के विक्रय की संविदा के प्रभाव के लिए तात्पर्यित या प्रवृत्त है, बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि मात्र इस तथ्य के कारण उसका रजिस्ट्रीकरण कभी भी आवश्यक है क्योंकि ऐसे दस्तावेज में किसी अग्रिम धन के संदाय का या विक्रय धन के संपूर्ण या किसी भाग का उल्लेख किया गया है । अतः उपर्युक्त स्पष्टीकरण संपूर्ण विवाद को स्पष्ट कर देता है इसलिए मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई कठिनाई नहीं है कि प्रदर्श-1 के रजिस्ट्रीकरण की कोई आवश्यकता नहीं थी और इसलिए विद्वान् निचले न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि रजिस्ट्रीकरण के अभाव में प्रदर्श-1 का कोई महत्व नहीं है ।

13. वादी-अपीलार्थी सं. 1 स्वयं पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में पेश हुआ है और उसने मुख्य परीक्षा में अपने अभिसाक्ष्य के पैरा 3, 4 और 6 में विनिर्दिष्ट रूप से यह कहते हुए अपने पक्षकथन का समर्थन किया है कि उसने तथा वादी-अपीलार्थी सं. 2 ने डीलरशिप लेने के लिए प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 को धनराशि दी थी किन्तु बाद में उनका कंपनी पर से विश्वास उठ गया और इसके पश्चात् जब उन्होंने प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 से धनराशि वापस करने के लिए कहा तो प्रतिवादी सं. 1 प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रतिवादी सं. 2 के साथ तारीख 25 दिसंबर, 1995 को एक लिखित करार निष्पादित किया जिसमें उन्होंने वादी-अपीलार्थियों द्वारा दी गई धनराशि को स्वीकार किया और 15 जनवरी, 1996 तक वाद भूमि उनको विक्रीत करने का करार भी किया । इस साक्षी ने अपने तथा प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों के हस्ताक्षरों को साबित किया है । तारीख 25 दिसंबर, 1995 के विक्रय करार को प्रदर्श-1 के रूप में अभिलेख पर पेश किया गया है । पी. डब्ल्यू. 1 का उपर्युक्त अभिसाक्ष्य विवाद रहित है क्योंकि प्रतिवादी-प्रत्यर्थी वादी-अपीलार्थियों के विरोध का प्रतिरोध करने के लिए निचले न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुए । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थी इस न्यायालय के समक्ष भी पेश होने में विफल रहे हैं और इसलिए यह स्पष्ट है कि पी. डब्ल्यू. 1 का अभिसाक्ष्य विवाद रहित है । लगभग इसी प्रकार का कथन पी. डब्ल्यू. 2 द्वारा किया गया है जो प्रदर्श-1 का साक्षी है और उसने इस पर अपने हस्ताक्षर साबित किए हैं । पी. डब्ल्यू. 3 भी प्रदर्श-1 का साक्षी है और उसने भी प्रदर्श-1 पर अपने हस्ताक्षर साबित किए हैं । पी. डब्ल्यू. 4 ने प्रदर्श-1 पर वादी-अपीलार्थी सं. 2 के हस्ताक्षर प्रदर्श-1/सी के रूप में साबित किए हैं । समान रूप में पी. डब्ल्यू. 5 ने प्रदर्श-1 पर अपने हस्ताक्षर प्रदर्श-1/डी के रूप में साबित किए हैं । उपर्युक्त सभी साक्षियों ने वादी-अपीलार्थियों के पक्षकथन का समर्थन किया है और मेरे मतानुसार मामले मे कहीं-कहीं उनके साक्ष्यों में कतिपय मामूली विरोधाभासों के आधार पर उनकी विश्वसनीयता पर संदेह नहीं किया जा सकता, विशेषतया उन परिस्थितियों में जब उनके कथन विवाद रहित रहे हैं । वादियों ने अपने वादपत्र में विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिवाक् किया है कि वे अभी भी तारीख 25 दिसंबर, 1995 के विक्रय करार के अनुसरण में वाद भूमि को क्रय करने के लिए तैयार और इच्छुक हैं और उपर्युक्त तथ्य विनिर्दिष्ट रूप से पी. डब्ल्यू. 1 द्वारा अपने कथन के पैरा 9 में कहा गया है । अतः यह स्पष्ट है कि वादी-अपीलार्थी अभी भी वाद भूमि क्रय करने के लिए तैयार और इच्छुक हैं ।

14. उपर्युक्त चर्चा के आधार पर यह अपील मंजूर की जाती है और 1999 के हक वाद सं. 02 में उप न्यायाधीश 3, कटियार द्वारा क्रमशः 4 फरवरी, 2012 और तारीख 24 फरवरी, 2012 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा अपास्त की जाती है और वादी-अपीलार्थियों द्वारा वाद डिक्री किया जाता है और तद्नुसार यह आदेश दिया जाता है कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थी आज से 3 मास के भीतर शेष प्रतिफल धनराशि लेने के पश्चात् तारीख 25 दिसंबर, 1995 के विक्रय करार के अनुसरण में वादी-अपीलार्थियों के हक में आत्यंतिक विक्रय विलेख निष्पादित करेंगे, जिससे विफल रहने पर वादी-अपीलार्थी न्यायालय की प्रक्रिया द्वारा तारीख 25 दिसंबर, 1995 के करार के अनुसरण में वाद भूमि के संबंध में आत्यंतिक विक्रय विलेख निष्पादित कराने के हकदार होंगे । तथापि, यदि वाद भूमि प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों द्वारा पहले ही किसी व्यक्ति को स्थानांतरण कर दी गई हो तो उस दशा में प्रतिवादी-अपीलार्थी प्रश्नगत धनराशि को निर्णय की तारीख से 3 मास के भीतर इसकी वसूली की तारीख तक 8 प्रतिशत वार्षिक की दर से साधारण ब्याज के साथ अपीलार्थियों को संदत्त करेंगे । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

एस. पिचई

बनाम

पोन्नाम्मल और अन्य

तारीख़ 4 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति के. के. शशिधरन

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 1, नियम 10 – संपत्ति के विभाजन के लिए वाद – प्रारंभिक डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् अंतिम डिक्री कार्यवाहियों के दौरान तृतीय पक्षकार द्वारा पक्षकार बनने के लिए आवेदन – ग्राह्यता – न्यायालय को अंतिम डिक्री कार्यवाही के दौरान तृतीय पक्षकार द्वारा आवेदन करने पर प्रारंभिक डिक्री को संशोधित करने की अधिकारिता है – अतः अंतिम डिक्री कार्यवाहियों में तृतीय पक्षकार द्वारा आवेदन करने पर उसे पक्षकार बनाए जाने में कोई वर्जन नहीं है ।

आवेदक 2005 के सिविल मूल वाद सं. 3 में पक्षकार नहीं था । विद्वान् जिला मुंसिफ, अरुप्पूकोट्टयी ने प्रथम प्रत्यर्थी के अनुरोध पर विभाजन के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित की थी । इसके पश्चात् प्रथम प्रत्यर्थी ने प्रारंभिक डिक्री के निबंधनों में अंतिम डिक्री पारित करने के लिए 2005 के अंतर्वर्ती आवेदन सं. 869 में कार्यवाहियां आरंभ कीं । विचारण न्यायालय द्वारा विभाजन के लिए संपत्ति की सीमाओं के निरीक्षण हेतु अधिवक्ता आयुक्त नियुक्त किया गया था । उस समय आवेदक को यह पता चला कि विभाजन के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित कर दी गई थी, जिसमें उसके कब्जे वाली संपत्ति भी सम्मिलित थी । अतः आवेदक ने अंतिम डिक्री याचिका में स्वयं को पक्षकार बनाने के लिए 2008 के अंतर्वर्ती आवेदन सं. 696 में एक आवेदन फाइल किया । विचारण न्यायालय द्वारा आरंभ में ही आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि अंतिम डिक्री कार्यवाहियां आवेदक द्वारा किए गए दावे को विनिश्चित करने के लिए उसे एक पक्षकार के रूप में सम्मिलित करने के लिए समुचित कार्यवाहियां नहीं हैं । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि आवेदक इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह विधि के अनुसार कोई अन्य कार्यवाही संस्थित करे । आवेदन खारिज किया गया था ।

आवेदक ने असफल होकर व्यथित महसूस करते हुए इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण द्वारा समावेदन किया है । पुनरीक्षण आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – मुख्य विवाद्यक यह है कि क्या "कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम" पद में "अंतिम कार्यवाहियां" सम्मिलित हैं, जिससे कि न्यायालय कार्यवाहियों से व्यथित तृतीय पक्षकार की सहमति के बिना पूर्व में पारित डिक्री के होते हुए भी पक्षकार बनाने के लिए कोई आवेदन ग्रहण कर सकता है । विभाजन के लिए सिविल वाद एक ऐसी कार्यवाही है जो अंतिम डिक्री के पारित होने के पश्चात् ही अंतिम बनती है । विभाजन के लिए वाद के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह कोई अंतिम डिक्री पारित होने तक जो प्रारंभिक डिक्री के आधार पर पारित की गई हो, विचारण न्यायालय की फाइल पर लंबित रहता है । ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रारंभिक डिक्री को अपास्त करने के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित करने से पूर्व या वाद फाइल करने के पूर्व पक्षकार बनाने के लिए किसी आवेदन के अभाव में अंतिम डिक्री याचिका में पक्षकार बनाने के लिए आवेदन ग्राह्य नहीं है । उक्त निष्कर्ष के लिए कोई विधिक आधार नहीं है । न्यायालय प्रारंभिक डिक्री को संशोधित करने के लिए या उस पक्षकार के जिसे अंतिम डिक्री याचिका में पक्षकार बनाया गया है, अनुरोध पर द्वितीय प्रारंभिक डिक्री पारित करने के लिए शक्ति रखता है । अंशों की घोषणा के लिए या हिस्से के प्रमाण के लिए जिसके लिए पक्षकार हकदार है, एक से अधिक प्रारंभिक डिक्रियां पारित करने के लिए कोई निर्बंधन नहीं है । ऐसा इसलिए है क्योंकि न्यायालय पर विभाजन के किसी वाद में उठाए गए संपूर्ण विवाद्यकों को विनिश्चित करने के लिए बाध्यता डाली गई है । दावे के लिए अधिकार के संबंध में परस्पर दावे को, विभाजन की जाने वाली संपत्ति और उन हिस्सों के संबंध में जिनके लिए पक्षकार हकदार हैं, परस्पर दावों को सदैव के लिए विनिश्चित किया जाना चाहिए । न्यायालय द्वारा पारित अंतिम डिक्री के लिए अंतिमता होनी चाहिए । अतः सभी विवाद अंतिम डिक्री पारित करने के पूर्व ही न्यायनिर्णीत किए जाने चाहिए । अतः इस तथ्य के होते हुए भी कि उसे केवल अंतिम डिक्री में पक्षकार बनाया गया था, न्यायालय इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह प्रारंभिक डिक्री के संशोधन के लिए अंतिम डिक्री में नए पक्षकार बनाने के लिए आवेदन ग्रहण करे । इस विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए कि विभाजन के लिए कोई वाद

अंतिम डिक्री पारित किए जाने तक लंबित रहता है, न्यायालय विद्वान् जिला मुंसिफ द्वारा अभिव्यक्त मत से सहमत नहीं है । अतः न्यायालय का यह मत है कि आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है । (पैरा 10, 11, 12 और 14)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1967]	ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1470 : **फूल चंद** बनाम **गोपाल लाल** ।	13

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2009 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन (पी. डी.) (एम. डी.) सं. 1066.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षणीय आवेदन ।

आवेदक की ओर से ए. अरुमुगम और मैसर्स अजमल एसोसिएट्स

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एस. नटराजन

न्यायमूर्ति के. के. शशिधरन – क्या प्रारंभिक डिक्री के पश्चात् तृतीय पक्षकार के अनुरोध पर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन पक्षकार बनाने के लिए अन्तर्वर्ती आवेदन को अंतिम डिक्री कार्यवाहियों के अधीन ग्रहण किया जा सकता है, यह मुख्य विवाद्यक है जो इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन में विचारार्थ उद्भूत हुआ है ।

संक्षिप्त तथ्य

2. आवेदक 2005 के सिविल मूल वाद सं. 3 में पक्षकार नहीं था । विद्वान् जिला मुंसिफ, अरुप्पूकोट्टयी ने प्रथम प्रत्यर्थी के अनुरोध पर विभाजन के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित की थी । इसके पश्चात् प्रथम प्रत्यर्थी ने प्रारंभिक डिक्री के निबंधनों में अंतिम डिक्री पारित करने के लिए 2005 के अंतर्वर्ती आवेदन सं. 869 में कार्यवाहियां आरंभ कीं । विचारण न्यायालय द्वारा विभाजन के लिए संपत्ति की सीमाओं के निरीक्षण हेतु अधिवक्ता आयुक्त नियुक्त किया गया था । उस समय आवेदक को यह पता चला कि विभाजन के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित कर दी गई थी, जिसमें उसके कब्जे वाली संपत्ति भी सम्मिलित थी । अत: आवेदक ने

अंतिम डिक्री याचिका में स्वयं को पक्षकार बनाने के लिए 2008 के अंतर्वर्ती आवेदन सं. 696 में एक आवेदन फाइल किया । विचारण न्यायालय द्वारा आरंभ में ही आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि अंतिम डिक्री कार्यवाहियां आवेदक द्वारा किए गए दावे को विनिश्चित करने के लिए उसे एक पक्षकार के रूप में सम्मिलित करने के लिए समुचित कार्यवाहियां नहीं हैं । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि आवेदक इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह विधि के अनुसार कोई अन्य कार्यवाही संस्थित करे । आवेदन खारिज किया गया था । आवेदक ने असफल होकर व्यथित महसूस करते हुए इस न्यायालय के समक्ष समावेदन किया है ।

पक्षकारों की दलीलें

3. आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि विचारण न्यायालय आवेदक द्वारा इस आधार पर पक्षकार बनाने के लिए फाइल किए गए आवेदन को खारिज करने में गलत है कि प्रारंभिक डिक्री को आक्षेपित करने को दृष्टिगत करते हुए अंतिम डिक्री में पक्षकार बनाने के लिए आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अंतिम डिक्री कार्यवाहियों में पक्षकार के रूप में पक्षकार बनाने के पश्चात् भी इस विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए आवेदक के लिए यह संभव होगा कि वह प्रारंभिक डिक्री को अपास्त करने के लिए या इसे संशोधित करने के लिए ऐसा कोई आवेदन फाइल करे क्योंकि प्रारंभिक डिक्री को पारित करना सिविल वाद के निपटान के समान नहीं होगा ।

4. प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि आवेदक के लिए यह उपचार उपलब्ध है कि वह विधि की ज्ञात रीति में प्रारंभिक डिक्री को अपास्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । विद्वान् काउंसेल के अनुसार सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन किसी आवेदन का क्षेत्र अत्यंत परिसीमित है । तृतीय पक्षकार इस बात के लिए स्वतंत्र नहीं है कि वह अपने परस्पर विरोधी दावे को विनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए अंतिम डिक्री याचिका में पक्षकार बने ।

विश्लेषण

5. प्रथम प्रत्यर्थी ने प्रत्यर्थी सं. 2 से 6 को प्रतिवादियों के रूप में पक्षकार बनाते हुए विभाजन के लिए एक वाद फाइल किया था । आवेदक सिविल वाद में पक्षकार नहीं था । आवेदक का यह कहना है कि अधिवक्ता

आयुक्त द्वारा विभाजन के लिए सीमाओं का माप करने के लिए संपत्ति पर आने पर उसे विचारण न्यायालय द्वारा पारित प्रारंभिक डिक्री के बारे में पता चला ।

6. आवेदक ने 2008 के अंतरिम आवेदन सं. 696 में अंतर्वर्ती आवेदन के समर्थन में शपथ-पत्र फाइल करते हुए यह कहा है कि मद सं. 1 पूर्ण रूप से उसकी संपत्ति है और इसलिए प्रथम प्रत्यर्थी को उक्त संपत्ति के विभाजन का दावा करने के लिए कोई अधिकार नहीं है । आवेदक ने यह भी कहा है कि उसे उस संपत्ति के संबंध में पट्टा दिया गया था और इसलिए उक्त संपत्ति विभाजित किए जाने योग्य नहीं है ।

7. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने 2008 के अंतरिम आवेदन सं. 696 में दिए गए अपने प्रति-शपथपत्र में मद सं. 1 के रूप में उपदर्शित संपत्ति के न्यागमन के संबंध में और आवेदक द्वारा किए गए दावे के संबंध में भिन्न कथन किया है ।

8. विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन आवेदन को केवल प्रारंभिक डिक्री में आक्षेप न किए जाने के आधार पर खारिज किया है । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि समुचित उपचार यह है कि समुचित कार्यवाहियां आरंभ करके प्रारंभिक डिक्री को अपास्त करने के लिए अनुरोध किया जाए न कि अंतिम डिक्री कार्यवाहियों में पक्षकार बनने के लिए आवेदन फाइल किया जाए ।

9. पक्षकारों को जोड़ने के लिए न्यायालय की शक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 में अधिनियमित की गई है । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 1, नियम 10(2) न्यायालय को कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर या तो स्वप्रेरणा पर या आवेदन फाइल करने पर आवश्यक पक्षकार बनाने के लिए अधिकारिता प्रदत्त करता है ।

10. मुख्य विवाद्यक यह है कि क्या "कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम" पद में "अंतिम कार्यवाहियां" सम्मिलित है, जिससे कि न्यायालय कार्यवाहियों के व्यथित तृतीय पक्षकार की सहमति के बिना पूर्व में पारित डिक्री के होते हुए भी पक्षकार बनाने के लिए कोई आवेदन ग्रहण कर सकता है ।

11. विभाजन के लिए सिविल वाद एक ऐसी कार्यवाही है जो अंतिम डिक्री के पारित होने के पश्चात् ही अंतिम बनती है । विभाजन के लिए वाद के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह कोई अंतिम डिक्री पारित

होने तक जो प्रारंभिक डिक्री के आधार पर पारित की गई हो, विचारण न्यायालय की फाइल पर लंबित रहता है ।

12. ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रारंभिक डिक्री को अपास्त करने के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित करने से पूर्व या वाद फाइल करने के पूर्व पक्षकार बनाने के लिए किसी आवेदन के अभाव में अंतिम डिक्री याचिका में पक्षकार बनाने के लिए आवेदन ग्राह्य नहीं है । उक्त निष्कर्ष के लिए कोई विधिक आधार नहीं है । न्यायालय प्रारंभिक डिक्री को संशोधित करने के लिए या उस पक्षकार के जिसे अंतिम डिक्री याचिका में पक्षकार बनाया गया है, अनुरोध पर द्वितीय प्रारंभिक डिक्री पारित करने के लिए शक्ति रखता है । अंशों की घोषणा के लिए या हिस्से के प्रमाण के लिए जिसके लिए पक्षकार हकदार है, एक से अधिक प्रारंभिक डिक्रियां पारित करने के लिए कोई निर्बंधन नहीं है । ऐसा इसलिए है क्योंकि न्यायालय पर विभाजन के किसी वाद में उठाए गए संपूर्ण विवाद्यकों को विनिश्चित करने के लिए बाध्यता डाली गई है । दावे के लिए अधिकार के संबंध में परस्पर दावे को, विभाजन की जाने वाली संपत्ति और उन हिस्सों के संबंध में जिनके लिए पक्षकार हकदार है, परस्पर दावों को सदैव के लिए विनिश्चित किया जाना चाहिए । न्यायालय द्वारा पारित अंतिम डिक्री के लिए अंतिमता होनी चाहिए । अतः सभी विवाद अंतिम डिक्री पारित करने के पूर्व ही न्यायनिर्णीत किए जाने चाहिए । अतः इस तथ्य के होते हुए भी कि उसे केवल अंतिम डिक्री में पक्षकार बनाया गया था, न्यायालय इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह प्रारंभिक डिक्री के संशोधन के लिए अंतिम डिक्री में नए पक्षकार बनाने के लिए आवेदन ग्रहण करे ।

विधि

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **फूल चंद** बनाम **गोपाल लाल**[1] वाले मामले में यह उपदर्शित किया कि उन सही अंशों की जिनके लिए पक्षकार हकदार हैं, घोषणा के लिए एक से अधिक आरंभिक डिक्रियां पारित करने के लिए कोई प्रतिषेध नहीं है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है :-

> "हमारा यह मत है कि यदि परिस्थितियां इसको न्यायोचित ठहराती हैं तो सिविल प्रक्रिया संहिता में ऐसा कुछ नहीं है जो एक

---

[1] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1470.

प्रारंभिक डिक्री से अधिक डिक्रियां पारित करने के लिए प्रतिषेध करता हो और ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक है कि विशेषतया विभाजन वादों में प्रारंभिक डिक्री पारित करने के पश्चात् कुछ पक्षकारों की मृत्यु हो जाती है और अन्य पक्षकारों के अंशों में तद्द्वारा वृद्धि हो जाती है । हम यह ऊपर पहले ही कह चुके हैं कि यह विवादित नहीं है कि विभाजन वादों में न्यायालय ऐसा प्रारंभिक डिक्री पारित करने के पश्चात् भी कर सकता है । हमारे मतानुसार न्याय के लिए यह उचित और पक्षकारों के लिए लाभकारी होगा, विशेषतया विभाजन वादों में अधिकारों को अंतिम रूप से तय कर दिया जाए और अंतिम डिक्री बनाने के पूर्व ही प्रारंभिक डिक्री में अंशों को विनिर्दिष्ट कर दिया जाए । यदि ऐसा किया जाता है तो विवादित प्रश्नों पर वाद के पक्षकारों के अधिकारों का स्पष्टतया अवधारण हो जाएगा और इसलिए हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती है कि ऐसे मामलों में कोई डिक्री विवादित अधिकारों को विनिश्चित कर देती है ; यदि ऐसा है तो इस बात के लिए कोई कारण नहीं है कि न्यायालय द्वारा किसी विभाजन वाद में अंशों को दुरुस्त करने वाली कोई द्वितीय प्रारंभिक डिक्री क्यों न पारित की जाए । अतः जहां तक विभाजन वादों का संबंध है, हमें इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि जहां प्रारंभिक डिक्री के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि अंशों में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है वहां न्यायालय ऐसा कर सकता है और उसे ऐसा करना चाहिए और यदि इस संबंध में कोई विवाद है तो न्यायालय को ऐसे विवाद को विनिश्चित करने वाला आदेश करना चाहिए कि विवाद और पहले ही पारित की गई डिक्री अर्थात् प्रारंभिक डिक्री में अंशों में परिवर्तन विनिर्दिष्ट करने से यह स्वतः ऐसी डिक्री बन जाएगी जो अपील किए जाने योग्य हो । तथापि, हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हमने जो ऊपर कहा है वह केवल विभाजन वादों तक निर्बंधित है और हम वर्तमान अपील के संबंध में या अन्य किस्म के ऐसे वादों के संबंध में मत व्यक्त नहीं कर रहे हैं जिनमें प्रारंभिक और अंतिम डिक्रियां पारित की जाती हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता में ऐसी परिस्थितियों में द्वितीय डिक्री पारित करने के विरुद्ध कोई प्रतिषेध नहीं है और हमें कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता कि हमें ऐसी परिस्थितियों में केवल इस आधार पर दूसरी प्रारंभिक डिक्री से इनकार करना चाहिए कि सिविल प्रक्रिया संहिता ऐसी संभावना को अनुध्यात नहीं करता । यदि किसी

मामले में दो मत संभव हों और स्पष्टतया ऐसा इसलिए हो क्योंकि उच्च न्यायालयों ने इस प्रश्न पर भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए हैं तो हमें उच्च न्यायालयों द्वारा अभिव्यक्त ऐसे मत को प्राथमिकता देनी चाहिए जिन्होंने यह अभिनिर्धारित किया हो कि दूसरी प्रारंभिक डिक्री पारित की जा सकती है विशेषतया विभाजन वादों में जहां पक्षकारों की प्रारंभिक डिक्री पारित करने के पश्चात् मृत्यु हो गई है और अंश (भाग) समायोजित किए जाने हैं । हमें इस बारे में कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि यदि ऐसे किसी मामले में जहां विवाद है, उस न्यायालय द्वारा विनिश्चय नहीं किया जाना चाहिए जिसने प्रारंभिक डिक्री पारित की है और इस बारे में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वाद अंतिम डिक्री पारित किए जाने तक बंद नहीं होता है और न्यायालय को उन विवादों को विनिश्चित करने की अधिकारिता है जो प्रारंभिक डिक्री के पश्चात् उद्‌भूत हुए हों, विशेषतया ऐसे विभाजन वाद में जहां किसी पक्षकार की मृत्यु हो गई है ....।"

14. इस विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए कि विभाजन के लिए कोई वाद अंतिम डिक्री पारित किए जाने तक लंबित रहता है, मैं विद्वान् जिला मुंसिफ द्वारा अभिव्यक्त मत से सहमत नहीं हूं । अतः मेरा यह मत है कि आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

15. तारीख 8 अप्रैल, 2009 का आदेश अपास्त किया जाता है । 2008 के अंतिरम आवेदन सं. 696 में फाइल आवेदन मंजूर किया जाता है ।

16. परिणामतः मैं इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर करता हूं । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । परिणामतः संबंधित प्रकीर्ण आवेदन बंद किए जाते हैं ।

पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया गया ।

मह.

गजेन्द्रन और अन्य

बनाम

थंगावेल

तारीख 13 नवंबर, 2017

न्यायमूर्ति ए. सेलवम और न्यायमूर्ति पी. कलाईयारासन

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 16(ग) और 20 – विक्रय-करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – विक्रेता द्वारा विक्रय-करार में मूल हक विलेख और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए अनुबंध किया जाना – विक्रेताओं द्वारा नियत अवधि के भीतर उक्त दस्तावेज़ पेश न किया जाना – क्रेता द्वारा अपनी ओर से संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए तैयारी और इच्छा उपदर्शित करना – क्रेता विनिर्दिष्ट अनुपालन के अनुतोष को पाने का हकदार है ।

वादपत्र में किए गए तात्विक प्रकथन ये हैं कि वाद संपत्ति प्रतिवादियों की आत्यंतिक संपत्ति है । प्रतिवादी उक्त संपत्ति को वादी के हक में 16 लाख 30 हजार रुपए की धनराशि के लिए विक्रीत करने के लिए तैयार हुए थे और तारीख 16 दिसंबर, 2006 को इस आशय का वाद से संबंधित विक्रय करार निष्पादित किया गया था और उसके निष्पादन की तारीख को वादी ने 3 लाख रुपए की धनराशि अग्रिम धन के रूप में दी थी । प्रतिवादियों ने 30 दिन की अवधि के भीतर रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पादित करने का वचन किया था । वादी ने जनवरी, 2007 के द्वितीय सप्ताह के दौरान प्रतिवादियों से मूल हक विलेख और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा, जिससे कि विक्रय विलेख की रजिस्ट्री कराने के लिए तारीख नियत की जा सके । तथापि, प्रतिवादियों ने उक्त दस्तावेज पेश नहीं किए । वादी 13 लाख 30 हजार रुपए के शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करके संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक था । प्रतिवादियों ने तारीख 29 जनवरी, 2007 को एक सूचना जारी की जिसमें उन्होंने मिथ्या अभिकथन किए । वादी ने 5 फरवरी, 2007 को उक्त सूचना की उपयुक्त उत्तर सूचना भेजी । चूंकि प्रतिवादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने में विफल रहे इसलिए वादी ने वादपत्र में उल्लिखित अनुतोष के लिए वर्तमान वाद संस्थित किया । विचारण

न्यायालय ने दोनों पक्षों के परस्पर विरोधी अभिवचनों के आधार पर आवश्यक विवाद्यक विरचित किए और मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य का विशलेषण करने के पश्चात् अनुरोध किए गए रूप में वाद डिक्री कर दिया । विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादियों द्वारा अपीलार्थियों के रूप में वर्तमान अपील फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह स्वीकृत तथ्य है कि प्रदर्श-ए1 में शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने और रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख संपन्न कराने के लिए 30 दिन की अवधि नियत की गई थी । इसके अतिरिक्त प्रदर्श-ए1 में इस आशय का उल्लेख किया गया है कि इस अवधि के दौरान प्रतिवादी मूल हक विलेख और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए आबद्ध हैं । वादी का यह विनिर्दिष्ट पक्षकथन है कि यद्यपि वादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक रहा और उसने जनवरी, 2007 के द्वितीय सप्ताह में प्रतिवादियों से उक्त दस्तावेज पेश करने के लिए कहा तथापि, वे प्रदर्श-ए1 में उल्लिखित दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल रहे । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि प्रदर्श-ए1 में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि प्रतिवादी 30 दिन की अवधि के दौरान हक संबंधी मूल दस्तावेज और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र देने के लिए आबद्ध हैं । चूंकि प्रतिवादी वादी को प्रदर्श-ए1 में उल्लिखित उक्त दस्तावेज देने में विफल रहे हैं और चूंकि वादी ने जनवरी, 2007 के द्वितीय सप्ताह के दौरान उक्त दस्तावेज प्राप्त करने के लिए प्रतिवादियों से संपर्क किया था इसलिए न्यायालय सरलतापूर्वक यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि वादी ने प्रदर्श-ए1 के निबंधनों में संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए अपनी इच्छा शक्ति उपदर्शित की थी और इसलिए प्रतिवादियों ने एक विधिक सूचना जारी की थी जिसके द्वारा प्रदर्श-ए1 में उल्लिखित निबंधनों के संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त प्रदर्श-ए3 एक खिझाऊ सूचना के सिवाय और कुछ नहीं है और यह इस प्रकार दी गई है मानो प्रतिवादीगण ने सदैव ही अपनी तैयारी और इच्छा उपदर्शित की है । वादी ने प्रदर्श-ए3 की प्राप्ति के पश्चात् प्रदर्श-ए2 उत्तर सूचना जारी की थी । अतः किसी भी दृष्टिकोण से देखते हुए प्रतिवादियों द्वारा ली गई प्रतिरक्षा को स्वीकार नहीं किया जा सकता । वर्तमान मामले में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वादी की ओर से संविदा के अपने भाग को पूरा करने में कोई विफलता नहीं है । तथापि, इसके प्रतिकूल प्रतिवादियों ने

प्रदर्श-ए1 में उल्लिखित शर्तों का अनुसरण किए बिना तारीख 29 जनवरी, 2007 की खिझाऊ विधिक सूचना जारी की । चूंकि विधिक सूचना अपने आप में ही तुच्छ है और चूंकि वादी ने सदैव ही संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए अपनी तैयारी और इच्छा उपदर्शित की है इसलिए प्रतिवादियों द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चय का वर्तमान मामले में अनुसरण नहीं किया जा सकता । यह पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है कि वादी ने प्रदर्श-ए1 के आरंभ से ही संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए अपनी तैयारी और इच्छा उपदर्शित की है । यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वादी की ओर से कोई विफलता या गलती नहीं की गई है और इन परिस्थितियों में वादी विनिर्दिष्ट अनुपालन के साम्यापूर्ण अनुतोष को पाने का हकदार है । विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् वाद ठीक ही डिक्री किया है । ऊपर की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में कोई त्रुटि या अवैधता प्रतीत नहीं होती है और इसलिए यह अपील वाद खारिज किए जाने योग्य है । (12, 13, 15, 17, 18, 19 और 20)

प्रभेदित निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 15 एस. सी. सी. 27 :
आई. एस. सिकंदर (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **के सुब्रमणि और अन्य ।** 16

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की अपील वाद सं. 807.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री एस. सब्रहमण्यन

प्रत्यर्थी की ओर से श्री ए. तमिलवानन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. सेलवम ने दिया ।

न्या. सेलवम – यह अपील वाद मुख्य जिला न्यायालय, पुड्डुचेरी द्वारा 2007 के मूल वाद सं. 7 में तारीख 6 सितंबर, 2011 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी ने वादी के रूप में विचारण न्यायालय की

फाइल पर 2007 का मूल वाद सं. 7 संस्थित किया था जिसमें उसने तारीख 16 दिसंबर, 2006 के विक्रय करार के अनुसरण में विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री पारित करने का अनुरोध किया और जिसमें वर्तमान अपीलार्थियों को प्रतिवादियों के रूप में पक्षकार बनाया गया है ।

3. वादपत्र में किए गए तात्विक प्रकथन ये हैं कि वाद संपत्ति प्रतिवादियों की आत्यंतिक संपत्ति है । प्रतिवादी उक्त संपत्ति को वादी के हक में 16 लाख 30 हजार रुपए की धनराशि के लिए विक्रीत करने के लिए तैयार हुए थे और तारीख 16 दिसंबर, 2006 को इस आशय का वाद से संबंधित विक्रय करार निष्पदित किया गया था और उसके निष्पादन की तारीख को वादी ने 3 लाख रुपए की धनराशि अग्रिम धन के रूप में दी थी । प्रतिवादियों ने 30 दिन की अवधि के भीतर रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पादित करने का वचन किया था । वादी ने जनवरी, 2007 के द्वितीय सप्ताह के दौरान प्रतिवादियों से मूल हक विलेख और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा, जिससे कि विक्रय विलेख की रजिस्ट्री कराने के लिए तारीख नियत की जा सके । तथापि, प्रतिवादियों ने उक्त दस्तावेज पेश नहीं किए । वादी 13 लाख 30 हजार रुपए के शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करके संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक था । प्रतिवादियों ने तारीख 29 जनवरी, 2007 को एक सूचना जारी की जिसमें उन्होंने मिथ्या अभिकथन किए । वादी ने 5 फरवरी, 2007 को उक्त सूचना की उपयुक्त उत्तर सूचना भेजी । चूंकि प्रतिवादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने में विफल रहे इसलिए वादी ने वादपत्र में उल्लिखित अनुतोष के लिए वर्तमान वाद संस्थित किया ।

4. प्रतिवादियों की ओर से फाइल किए गए लिखित कथन में यह प्रकथन किया गया है कि वाद से संबंधित विक्रय करार में उल्लिखित शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने के लिए और रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख कराने के लिए 30 दिन की अवधि नियत की गई थी । इस अवधि के दौरान वादी ने शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय नहीं किया और इन परिस्थितियों में प्रतिवादियों ने तारीख 29 जनवरी, 2007 को एक विधिक सूचना जारी की । इस सूचना की प्राप्ति के पश्चात् वादी ने एक मिथ्या उत्तर सूचना जारी की । वाद से संबंधित संपत्तियों का मूल्य लगभग 25 लाख है और इसलिए वाद में कोई बल नहीं है और इसलिए यह खारिज किए जाने योग्य है ।

5. विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के परस्पर विरोधी अभिवचनों के आधार पर आवश्यक विवाद्यक विरचित किए और मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य का विशलेषण करने के पश्चात् अनुरोध किए गए रूप में वाद डिक्री कर दिया । विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादियों द्वारा अपीलार्थियों के रूप में वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

6. वादी का संक्षेप में पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 16 दिसंबर, 2006 को वादी और प्रतिवादियों के बीच वाद से संबंधित विक्रय करार निष्पादित किया गया था, जिसके द्वारा प्रतिवादी वाद संपत्ति को 16 लाख 30 हजार रुपए की धनराशि के बदले विक्रीत करने के लिए सहमत हुए थे और उक्त करार के निष्पादन की तारीख को वादी ने 3 लाख रुपए की धनराशि संदत्त की थी । इसके अतिरिक्त दोनों पक्षकार इस बात के लिए सहमत हुए कि प्रतिवादी 30 दिन की अवधि के भीतर मूल विक्रय विलेख और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करेंगे और जनवरी, 2007 के द्वितीय सप्ताह में वादी ने प्रतिवादियों से मूल दस्तावेज और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र पेश करने के लिए कहा किन्तु प्रतिवादियों ने उक्त दस्तावेज पेश नहीं किए । प्रतिवादियों ने तारीख 29 जनवरी, 2007 को एक खिझाने वाली लिखित सूचना जारी की और वादी ने तारीख 5 फरवरी, 2007 की सूचना भेजकर उक्त सूचना का समुचित रूप से उत्तर दिया । वादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए सदैव ही तैयार और इच्छुक रहा और उक्त परिस्थितियों के अधीन वर्तमान वाद, वादपत्र में ईप्सित अनुतोष प्राप्त करने लिए प्रस्तुत किया गया ।

7. इसके प्रतिकूल प्रतिवादियों की ओर से यह कहा गया है कि वाद से संबंधित विक्रय करार में विक्रय प्रतिफल की शेष धनराशि का संदाय करने और रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख संपन्न कराने के लिए 30 दिन की अवधि नियत की गई थी । किन्तु इस अवधि के दौरान वादी ने शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने में कोई दिलचस्पी उपदर्शित नहीं की और इसलिए प्रतिवादियों ने तारीख 29 जनवरी, 2007 की विधिक सूचना जारी करना पंसद किया और सूचना की प्राप्ति के पश्चात् भी वादी ने अपनी ओर से तैयारी और इच्छा उपदर्शित नहीं की और इसलिए वर्तमान वाद में मांगा गया अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता और वर्तमान वाद हर प्रकार से खारिज किए जाने योग्य है ।

8. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध दोनों पक्षों के साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् वाद अनुरोध किए गए रूप में डिक्री किया ।

9. न्यायालय ने दोनों पक्षों द्वारा दी गई परस्पर दलीलों और अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित तथ्यात्मक और विधिक बिन्दुओं का विश्लेषण किया :–

(1) क्या वादी ने तारीख 16 दिसंबर, 2006 के विक्रय करार के आरंभ से तैयार होना और इच्छुक होना उपदर्शित किया है ?

(2) क्या वादी विनिर्दिष्ट अनुपालन का साम्यापूर्ण अनुतोष पाने का हकदार है ?

10. अपीलार्थी/प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने इस आशय की दलील को बार-बार दोहराया है कि वाद से संबंधित विक्रय करार को प्रदर्श-ए के रूप में चिह्नांकित किया गया है । प्रतिवादियों द्वारा तारीख 29 जनवरी, 2007 को जारी की गई विधिक सूचना को प्रदर्श-3 के रूप में चिह्नांकित किया गया है और तारीख 5 फरवरी, 2005 की उत्तर सूचना को प्रदर्श-2 के रूप में चिह्नांकित किया गया है । प्रदर्श-ए1 में शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने और रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख कराने के लिए 30 दिन की अवधि नियत की गई थी । वादी ने इस अवधि के भीतर शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई और इसलिए प्रदर्श-ए3 जारी की गई जिसके द्वारा प्रतिवादियों ने वाद से संबंधित विक्रय करार को रद्द कर दिया । चूंकि वादी ने संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए अपनी तैयारी और इच्छा उपदर्शित नहीं की, इसलिए विनिर्दिष्ट अनुपालन का साम्यापूर्ण अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता और इसलिए विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर समुचित रूप से विचार किए बिना त्रुटिपूर्ण रूप से वाद डिक्री किया है और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है ।

11. प्रत्यर्थी/वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने सामान्य रूप में इस आशय की दलील दी है कि प्रदर्श-ए1 में शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने और रजिस्ट्री कराने के लिए 30 दिन की अवधि नियत की गई थी और इसके अतिरिक्त प्रदर्श-ए1 ने यह भी उल्लेख किया है कि प्रतिवादीगण इस अवधि के भीतर हक विलेख और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र देने के लिए आबद्ध थे और वादी ने जनवरी 2007 के द्वितीय सप्ताह में उनसे मूल दस्तावेज और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा था तथापि, वे उक्त दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल रहे । वादी संविदा के

अपने भाग को पूरा करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक रहा और इसलिए विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् वाद ठीक ही डिक्री किया है और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

12. न्यायालय ने दोनों पक्षों की परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार करने के लिए प्रदर्श-ए1 में किए गए उल्लेख का गहराई से विश्लेषण किया । यह स्वीकृत तथ्य है कि प्रदर्श-ए1 में शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने और रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख संपन्न कराने के लिए 30 दिन की अवधि नियत की गई थी । इसके अतिरिक्त प्रदर्श-ए1 में इस आशय का उल्लेख किया गया है कि इस अवधि के दौरान प्रतिवादी मूल हक विलेख और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए आबद्ध हैं ।

13. वादी का यह विनिर्दिष्ट पक्षकथन है कि यद्यपि वादी संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक रहा और उसने जनवरी, 2007 के द्वितीय सप्ताह में प्रतिवादियों से उक्त दस्तावेज पेश करने के लिए कहा तथापि, वे प्रदर्श-ए1 में उल्लिखित दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल रहे ।

14. वादी ने अपनी ओर से पी. डब्ल्यू.-1 के रूप में स्वयं अपनी परीक्षा कराई है और उसने यह विनिर्दिष्ट साक्ष्य दिया है कि जनवरी, 2007 के द्वितीय सप्ताह में वह प्रतिवादियों से मिला था । तथापि, प्रतिवादी हक से संबंधित मूल दस्तावेज और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र देने में विफल रहे । इस प्रक्रम पर डी. डब्ल्यू.-1 द्वारा दिए गए साक्ष्य पर विचार करना अधिक उपयोगी होगा । डी. डब्ल्यू.-1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान स्पष्ट रूप से इस तथ्य को स्वीकार किया है कि हक संबंधी मूल दस्तावेज और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र वादी को नहीं दिए गए हैं ।

15. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि प्रदर्श-ए1 में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि प्रतिवादी 30 दिन की अवधि के दौरान हक संबंधी मूल दस्तावेज और ऋण प्रभार प्रमाणपत्र देने के लिए आबद्ध हैं । चूंकि प्रतिवादी वादी को प्रदर्श-ए1 में उल्लिखित उक्त दस्तावेज देने में विफल रहे हैं और चूंकि वादी ने जनवरी, 2007 के द्वितीय सप्ताह के दौरान उक्त दस्तावेज प्राप्त करने के लिए प्रतिवादियों से संपर्क किया था इसलिए न्यायालय सरलतापूर्वक यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि वादी

ने प्रदर्श-ए1 के अनुसरण में संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए अपनी इच्छा शक्ति उपदर्शित की थी और इसके अतिरिक्त प्रतिवादियों तारीख 29 जनवरी, 2007 को एक विधिक सूचना जारी की थी जिसके द्वारा प्रदर्श-ए1 में उल्लिखित निबंधनों के संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया गया । इसके अतिरिक्त प्रदर्श-ए3 एक खिझाऊ सूचना के सिवाय और कुछ नहीं है और यह इस प्रकार दी गई है मानो प्रतिवादीगण ने सदैव ही अपनी तैयारी और इच्छा उपदर्शित की है । वादी ने प्रदर्श-ए3 की प्राप्ति के पश्चात् प्रदर्श-ए2 उत्तर सूचना जारी की थी । अतः किसी भी दृष्टिकोण से देखते हुए प्रतिवादियों द्वारा ली गई प्रतिरक्षा को स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

16. अपीलार्थी/प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने **आई. एस. सिकंदर (मृतक)** द्वारा **विधिक प्रतिनिधि** बनाम **के. सुब्रमणि और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया है जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि वादी विनिर्दिष्ट अनुपालन के किसी वाद में संविदा के अपने भाग को पूरा करने में विफल रहता है और संविदा प्रतिवादी की ओर से पर्यवसित होती है तो संविदा के पर्यवसान के संबंध में घोषणा का अनुतोष अत्यंत आवश्यक है ।

17. वर्तमान मामले में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वादी की ओर से संविदा के अपने भाग को पूरा करने में कोई विफलता नहीं है । तथापि, इसके प्रतिकूल प्रतिवादियों ने प्रदर्श-ए1 में उल्लिखित शर्तों का अनुसरण किए बिना तारीख 29 जनवरी, 2007 की खिझाऊ विधिक सूचना जारी की । चूंकि विधिक सूचना अपने आप में ही तुच्छ है और चूंकि वादी ने सदैव ही संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए अपनी तैयारी और इच्छा उपदर्शित की है इसलिए प्रतिवादियों द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चय का वर्तमान मामले में अनुसरण नहीं किया जा सकता ।

18. यह पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है कि वादी ने प्रदर्श-ए1 के आरंभ से ही संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए अपनी तैयारी और इच्छा उपदर्शित की है । यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वादी की ओर से कोई विफलता या गलती नहीं की गई है और इन परिस्थितियों में वादी विनिर्दिष्ट अनुपालन के साम्यापूर्ण अनुतोष को पाने का हकदार है ।

19. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् वाद ठीक ही डिक्री किया है ।

---

[1] (2013) 15 एस. सी. सी. 27.

20. ऊपर की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में कोई त्रुटि या अवैधता प्रतीत नहीं होती है और इसलिए यह अपील वाद खारिज किए जाने योग्य है ।

21. यह अपील वाद खर्चों के साथ खारिज किया जाता है । मुख्य जिला न्यायालय पुड्डुचेरी द्वारा 2007 के मूल वाद सं. 7 में तारीख 6 सितंबर, 2011 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2018) 2 सि. नि. प. 248 **मध्य प्रदेश**

रणछोड़ और अन्य

बनाम

राम चन्द्र और एक अन्य

तारीख 21 जून, 2017

न्यायमूर्ति प्रकाश श्रीवास्तव

हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) – धारा 12, परंतुक (ख) – दत्तक – निहित हित – केवल वह संपत्ति जो दत्तक लिए जाने के पूर्व दत्तक बालक में निहित होती है, अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के अधीन उसमें सतत रूप से निहित रहती है – दत्तक के नैसर्गिक पिता की सहदायिकी संपत्तियां उसमें निहित नहीं हो सकतीं और ऐसी संपत्तियां अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के अधीन संरक्षित नहीं होती हैं ।

प्रतिवादी सं. 1 ने यह अभिवचन करते हुए घोषणा, विभाजन, कब्जा और अंतःकालीन लाभ के लिए वाद फाइल किया था कि वाद संपत्तियां मूल रूप से सेवा राम की थीं और उसकी मृत्यु के पश्चात् ये संपत्तियां उसके पुत्र सीता राम और नारायण को प्राप्त हुईं । प्रत्यर्थी सं. 1 सीता राम का जैविक पुत्र है जबकि अपीलार्थी नारायण के पुत्र, पुत्रियां और विधवा हैं । यह भी अभिवचन किया गया था कि प्रत्यर्थी सं. 1 सीता राम

का एकमात्र वारिस है और सीता राम की मृत्यु वाद फाइल करने से 40 वर्ष पूर्व हुई थी जब प्रत्यर्थी सं. 1 अवयस्क बालक था । नारायण ने प्रत्यर्थी सं. 1 की देखभाल की थी और वह नारायण के साथ वाद भूमि में खेती कर रहा था और उसके नाम का नामांतरण उसके पिता के स्थान पर हो गया था । इसके पश्चात् चुन्नी बाई द्वारा ग्राम बनेड़िया में प्रत्यर्थी सं. 1 को दत्तक लिया गया था तथापि, वह वाद भूमि में संयुक्त रूप से और सतत रूप से खेती करता रहा और जब उसे राजस्व अभिलेख से अपना नाम खारिज होने के बारे में पता चला तो उसने वर्तमान वाद फाइल किया । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन यह अपील वाद में के प्रतिवादियों द्वारा दोनों निचले न्यायालयों के निर्णयों को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है । विचारण न्यायालय ने तारीख 4 अप्रैल, 1996 के निर्णय द्वारा प्रत्यर्थी-वादी द्वारा फाइल किए गए 1994 के सी. एस. सं. 70-ए को डिक्री किया है और प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 28 नवंबर, 1998 के निर्णय द्वारा 1996 की सिविल अपील सं. 53-ए खारिज करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – धारा 12 के परंतुक (ख) के निबंधनों में दत्तक से पूर्व दत्तक आपत्य में निहित संपत्ति इससे संबद्ध दायित्वों के अध्यधीन उसमें सतत रूप से निहित बनी रहेगी । वर्तमान मामले में स्वीकृततः कोई विभाजन नहीं हुआ है क्योंकि प्रत्यर्थी का वाद विभाजन के लिए भी है इसलिए मूलभूत प्रश्न यह है कि क्या सीता राम की मृत्यु के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा प्राप्त पैतृक संपत्ति में अविभाजित अंश उसमें संपत्ति निहित होने के समान है ? इस संबंध में स्थिति यह है कि अविभाजित संपत्ति में किसी सहदायिक का अंश घटता-बढ़ता अंश होता है जो सहदायिकी के सदस्यों की वृद्धि और कमी के साथ घटता-बढ़ता है । अंश तभी स्पष्ट होता है, जब संपत्ति का विभाजन हो जाता है, इसलिए पैतृक संपत्ति में विभाजन होने तक यह नहीं कहा जा सकता कि वह सहदायिक में निहित हो गया है । तथ्यात्मक और विधिक स्थिति पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय का यह मत है कि केवल वह संपत्ति जो दत्तक लिए जाने के पूर्व दत्तक बालक में निहित होती है, अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के अधीन उसमें सतत रूप से निहित रहती है और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 1 को जो सहदायिकी का एक सदस्य है, दत्तक से पूर्व सहदायिकी में अविभाजित अंश मिलेगा और उसके नैसर्गिक पिता की सहदायिकी संपत्तियां उसमें निहित नहीं हो सकतीं और ऐसी संपत्तियां

अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के अधीन संरक्षित नहीं होंगी । अत: प्रत्यर्थी सं. 1 अपने दत्तक लिए जाने के पश्चात् उक्त पैतृक संपत्ति के विभाजन के लिए हकदार नहीं है । निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करते हुए प्रत्यर्थी के वाद को डिक्री करने में अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के आशय का मूल्यांकन करने में त्रुटि की है कि प्रत्यर्थी के नैसर्गिक पिता के कुटुंब की पैतृक संपत्तियां उसमें निहित हो गई थीं । निचले न्यायालयों के ऐसे निष्कर्ष को ऊपर उल्लिखित विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए कायम नहीं रखा जा सकता । (पैरा 9 और 14)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2010]	ए. आई. 2010 (एन. ओ. सी.) 657 (पी. एंड एच.) : **खिदमत सिंह** बनाम **जोगिन्दर सिंह और अन्य** ;	13
[2001]	ए. आई. आर. 2001 पटना 125 : **संतोष कुमार जालान** उर्फ **कन्हैया लाल जालान** बनाम **चन्द्र किशोर जालान और एक अन्य** ;	12
[1992]	ए. आई. आर. 1992 बाम्बे 189 : **देवगौंड़ा रायगौंड़ा पाटिल** बनाम **शामगौंड़ा रायगौंड़ा पाटिल और एक अन्य** ;	11,13
[1988]	ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 845 : **धर्मा शाम राव अगालवे** बनाम **पांडुरंग मिरागू अगालवे और अन्य** ;	9, 10, 11, 13
[1987]	ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 398 : **वसंत और एक अन्य** बनाम **दत्तू और अन्य** ;	9, 11
[1981]	ए. आई. आर. 1981 बाम्बे 109 : **वाई. के. नलावड़े और अन्य** बनाम **आनंद जी. चवन और अन्य** ;	9
[1981]	ए. आई. आर. 1981 आंध्र प्रदेश 19 : **यरलागडडा नायूदम्मा** बनाम **आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य** ।	11, 12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1999 की द्वितीय अपील सं. 57.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री एस. एस. गर्ग

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री बी. एल. पवेचा और न्यायमित्र

न्यायमूर्ति प्रकाश श्रीवास्तव – सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन यह अपील वाद में के प्रतिवादियों द्वारा दोनों निचले न्यायालयों के निर्णयों को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है । विचारण न्यायालय ने तारीख 4 अप्रैल, 1996 के निर्णय द्वारा प्रत्यर्थी-वादी द्वारा फाइल किए गए 1994 के सी. एस. सं. 70-ए को डिक्री किया है और प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 28 नवंबर, 1998 के निर्णय द्वारा 1996 की सिविल अपील सं. 53-ए खारिज करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की है ।

2. प्रतिवादी सं. 1 ने यह अभिवचन करते हुए घोषणा, विभाजन, कब्जा और अंतःकालीन लाभ के लिए वाद फाइल किया था कि वाद संपत्तियां मूल रूप से सेवा राम की थीं और उसकी मृत्यु के पश्चात् ये संपत्तियां उसके पुत्र सीता राम और नारायण को प्राप्त हुईं । प्रत्यर्थी सं. 1 सीता राम का जैविक पुत्र है जबकि अपीलार्थी नारायण के पुत्र, पुत्रियां और विधवा हैं । यह भी अभिवचन किया गया था कि प्रत्यर्थी सं. 1 सीता राम का एकमात्र वारिस है और सीता राम की मृत्यु वाद फाइल करने से 40 वर्ष पूर्व हुई थी जब प्रत्यर्थी सं. 1 अवयस्क बालक था । नारायण ने प्रत्यर्थी सं. 1 की देखभाल की थी और वह नारायण के साथ वाद भूमि में खेती कर रहा था और उसके नाम का नामांतरण उसके पिता के स्थान पर हो गया था । इसके पश्चात् चुन्नी बाई द्वारा ग्राम बनेड़िया में प्रत्यर्थी सं. 1 को दत्तक लिया गया था तथापि, वह वाद भूमि में संयुक्त रूप से और सतत रूप से खेती करता रहा और जब उसे राजस्व अभिलेख से अपना नाम खारिज होने के बारे में पता चला तो उसने वर्तमान वाद फाइल किया ।

3. अपीलार्थियों ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया था और यह अभिवाक् किया था कि चुन्नी बाई पत्नी भेराजी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 को 35 वर्ष पूर्व दत्तक लिया गया था और सीता राम कभी भी संयुक्त कुटुंब का सदस्य नहीं रहा था और उसके बुरे आचरण के कारण उसे कुटुंब से पृथक् कर दिया गया था और सीता राम की मृत्यु के पश्चात्

उसकी पत्नी प्रत्यर्थी सं. 1 को अनाथ छोड़ कर नतरा चली गई थी और इसलिए नारायण ने प्रत्यर्थी सं. 1 की देखभाल की थी तथापि, प्रत्यर्थी सं. 1 का वाद संपत्ति में कोई अधिकार या हक नहीं था और उसकी सम्मति से तारीख 1 मार्च, 1971 को उसका नाम राजस्व अभिलेख से निरस्त कर दिया गया था ।

4. विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालते हुए वाद डिक्री कर दिया कि वाद संपत्तियां अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 1 की पैतृक संपत्तियां थीं जिसमें वे संयुक्त रूप से खेती कर रहे थे । यह भी मत व्यक्त किया गया था कि प्रत्यर्थी सं. 1 को चुन्नी बाई द्वारा 10-11 वर्ष पहले दत्तक लिया गया था तथापि, पैतृक संपत्ति में उसका अधिकार समाप्त नहीं हुआ था । तद्नुसार वाद डिक्री किया गया था । प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की है ।

5. इस न्यायालय ने तारीख 16 नवंबर, 1999 के आदेश द्वारा विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों पर अपील ग्रहण की थी :–

> "1. क्या हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम की धारा 12 में प्रयुक्त 'संपत्ति जो निहित थी', शब्दों का ऐसे अधिकार के रूप में अर्थान्वयन किया जा सकता है जो निहित हो ?
>
> 2. क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन जब किसी ऐसे बालक को दत्तक लिया गया हो जो सहदायिकी का सदस्य हो और जिसका जन्म द्वारा सहदायिकी संपत्ति में अधिकार हो, वह दत्तक लिए जाने के पश्चात् अन्य सहदायिकों के साथ सतत रूप से कोई अधिकार रखेगा ?"

6. चूंकि विधि के उपर्युक्त प्रश्न एक दूसरे से संबद्ध हैं इसलिए उनका इस प्रकार उत्तर दिया जाता है ।

7. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह स्पष्ट है कि दोनों निचले न्यायालयों ने समवर्ती रूप से यह पाया है कि वाद संपत्तियां पैतृक संपत्तियां थीं और ये संपत्तियां सेवा राम के दो पुत्रों अर्थात् सीता राम और नारायण को विरासत में मिली थीं । अपीलार्थी नारायण के विधिक प्रतिनिधि हैं, जबकि प्रत्यर्थी सं. 1 सीता राम का पुत्र है । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा समवर्ती रूप से यह भी पाया गया है कि प्रत्यर्थी का दत्तक चुन्नी बाई द्वारा तारीख 4

नवंबर, 1962 को ग्राम बनेड़िया में लिया गया था और प्रत्यर्थी के पिता सीता राम की लगभग 1955-56 में किसी समय मृत्यु हुई थी । प्रथम अपील न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि सीता राम की मृत्यु के पश्चात् वाद से संबंधित मकान और कृषि भूमि के संबंध में हक प्रत्यर्थी सं. 1 को उपार्जित हो गया था और इसलिए हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम, 1956 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 12(ख) के परंतुक के निबंधनों में वाद संपत्ति में उसका अधिकार उसके दत्तक लिए जाने के पश्चात् भी बना रहेगा ।

8. हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम की धारा 12 इस प्रकार उपबंध करती है :-

"12. **दत्तक के परिणाम** – दत्तक आपत्य दत्तक की तारीख से अपने दत्तक पिता या माता का आपत्य समस्त प्रयोजनों के लिए समझा जाएगा और ऐसी तारीख से यह समझा जाएगा कि उस आपत्य के अपने जन्म के कुटुंब के साथ समस्त बंधन टूट गए हैं और उनका स्थान उन बंधनों ने ले लिया है जो दत्तक कुटंब में दत्तक के कारण सृजित हुए हों :

परन्तु –

(क) वह आपत्य किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह नहीं कर सकेगा जिससे कि यदि वह अपने जन्म के कुटुंब में ही बन रहा होता तो वह विवाह न कर सकता था ;

(ख) कोई भी संपत्ति जो दत्तक आपत्य में दत्तक के पूर्व निहित थी, ऐसी संपत्ति के स्वामित्व से संलग्न बाध्यताओं के, यदि कोई हों, अध्यधीन, जिनके अन्तर्गत उसके जन्म के कुटुंब में के, नातेदारों का भरणपोषण करने की बाध्यता भी आती है, ऐसे व्यक्ति में निहित बनी रहेगी ;

(ग) दत्तक आपत्य किसी व्यक्ति को उस सम्पदा से निर्निहित नहीं करेगा जो उस व्यक्ति में दत्तक के पूर्व निहित हो गई है ।"

9. धारा 12 के परंतुक (ख) के निबंधनों में दत्तक से पूर्व दत्तक आपत्य में निहित संपत्ति इससे संबद्ध दायित्वों के अध्यधीन उसमें सतत रूप से निहित बनी रहेगी । वर्तमान मामले में स्वीकृततः कोई विभाजन नहीं

हुआ है क्योंकि प्रत्यर्थी का वाद विभाजन के लिए भी है इसलिए मूलभूत प्रश्न यह है कि क्या सीता राम की मृत्यु के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा प्राप्त पैतृक संपत्ति में अविभाजित अंश उसमें संपत्ति निहित होने के समान है ? इस संबंध में स्थिति यह है कि अविभाजित संपत्ति में किसी सहदायिक का अंश घटता-बढ़ता अंश होता है जो सहदायिकी के सदस्यों की वृद्धि और कमी के साथ घटता-बढ़ता है । अंश तभी स्पष्ट होता है, जब संपत्ति का विभाजन हो जाता है, इसलिए पैतृक संपत्ति में विभाजन होने तक यह नहीं कहा जा सकता कि वह सहदायिक में निहित हो गया है । [**धर्मा शाम राव अगालवे** बनाम **पांडुरंग मिरागू अगालवे और अन्य**[1], **वाई के. नलावड़े और अन्य** बनाम **आनंद जी. चवन और अन्य**[2] और **वसंत और एक अन्य** बनाम **दत्तू और अन्य**[3] वाले मामले देखिए] ।

10. उच्चतम न्यायालय ने **धर्मा शाम राव** बनाम **पांडुरंग मिरागू अगालवे** (पूर्वोक्त) वाले मामले में **वसंत** (पूर्वोक्त) वाले मामले में पूर्वतर निर्णय का अनुमोदन करते हुए इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "वाई के. नलावड़े और अन्य **बनाम** आनंद जी. चवन और अन्य, ए. आई. आर. 1981 बाम्बे 109 वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया विनिश्चय जिसका उच्च न्यायालय द्वारा अपील खारिज करने में अनुसरण किया गया था और जिससे वर्तमान अपील उद्भूत हुई है, ठीक ही दिया गया है । हम बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त करने के लिए विनिश्चय में दिए गए तर्कों से सहमत हैं कि अधिनियम की धारा 12 के परंतुक का खंड (ग) इस प्रकृति के मामले को लागू नहीं होता है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **वसंत** (पूर्वोक्त) वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है कि मिरागू की मृत्यु के पश्चात् अपीलार्थी-धर्मा में संयुक्त कुटुम्बीय संपत्ति 'निहित' नहीं हुई थी और जब पांडुरंग-प्रथम प्रत्यर्थी का दत्तक लिया गया था तो वह संपत्ति से 'वंचित' नहीं हुआ था । आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा नरसा हनुमत राव, 1964 (1) आंध्र डब्ल्यू. आर. 156 वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का जिसमें प्रतिकूल मत व्यक्त किया गया है, हम अनुमोदन नहीं कर रहे हैं । अतः इसे उलटा

---

[1] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 845.

[2] ए. आई. आर. 1981 बाम्बे 109.

[3] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 398.

जाता है ।"

11. आरंभतः आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने **यरलागडडा नायूदम्मा** बनाम **आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था कि अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के अधीन किसी सहदायिक का जिसे दत्तक दिया गया है, उसके नैसर्गिक पिता की अविभाजित संपत्ति में अधिकार निहित होता है तथापि, बाद में बम्बई उच्च न्यायालय ने **देवगौड़ा रायगौंड़ा पाटिल** बनाम **शामगौंड़ा रायगौंड़ा पाटिल और एक अन्य**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा **वसंत** (पूर्वोक्त) और **धर्मा शाम राव अगालवे** (पूर्वोक्त) वाले मामलों की अवेक्षा करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दत्तक लिए गए व्यक्ति में उसके नैसर्गिक जन्म की अविभाजित संयुक्त कुटम्बीय संपत्ति में अधिकार निहित नहीं हो सकता है । **देवगौंड़ा रायगौंड़ा पाटिल** बनाम **शामगौंड़ा रायगौंड़ा पाटिल और अन्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त किया गया मत इस प्रकार है :–

> "16. उच्चतम न्यायालय द्वारा धर्मा शाम राव अगालवे **बनाम** पांडुरंग मिरागू (पूर्वोक्त) वाले मामले में ऐसा ही मत दोहराया गया है । उच्चतम न्यायालय ने वाई. के. नलावड़े और अन्य **बनाम** आनंद जी. चवन (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय की पुष्टि की है । अतः मेरे मतानुसार यदि कोई सहदायिक या संयुक्त कुटुंब दत्तक की तारीख को जन्म से कुटुंब में मौजूद है तो यह नहीं कहा जा सकता कि दत्तक व्यक्ति में कोई संपत्ति निहित हुई है । चूंकि संपत्ति निहित नहीं होती है, इसलिए अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के उपबंध लागू नहीं होते हैं । धारा 12 के परंतुक (ख) के संदर्भ में 'निहित संपत्ति' से यह अभिप्रेत है कि जहां अजेय अधिकार सृजित होता है अर्थात् जहां कोई अत्यावश्यकता नहीं है वहां यह विशिष्ट संपत्ति के संबंध में विफल हो सकता है । दूसरे शब्दों में, जहां किसी विशिष्ट संपत्ति के संबंध में पूर्ण स्वामित्व मिल जाता है । तथापि, सहदायिकी संपत्ति के मामले में ऐसी स्थिति नहीं है । सहदायिकी संपत्ति का कोई सहदायिक स्वामी नहीं होता है और न ही वह कभी किसी विशिष्ट संपत्ति का स्वामी होता है । संयुक्त कुटुंब में

---

[1] ए. आई. आर. 1981 आंध्र प्रदेश 19.

[2] ए. आई. आर. 1992 बाम्बे 189.

निहित सभी संपत्तियां संयुक्त कुटुंब द्वारा धारित होती हैं । अतः मैं श्री इंगले की दलील को खारिज करता हूं ।"

12. पटना उच्च न्यायालय के समक्ष भी इसी प्रकार का विवाद्यक उद्भूत हुआ था, जिसमें पटना उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **संतोष कुमार जालान** उर्फ **कन्हैया लाल जालान** बनाम **चन्द्र किशोर जालान और एक अन्य**[1] वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा **यरलागडडा नयूदम्मा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत से असहमति व्यक्त करते हुए इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "12. मुझे खेद है कि मैं सही विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए इस मत से सहमत होने में असमर्थ हूं । मैंने ऊपर यह उल्लेख किया है कि यद्यपि किसी सहदायिक में संयुक्त कब्जे का अधिकार निहित होता है और वह अपने नैसर्गिक कुटुंब की संपदा का उपभोग करता है, तथापि, परंतुक (ख) 'कोई सपंत्ति जो निहित' पद को निर्दिष्ट करता है । चूंकि 'कोई संपत्ति' निहित नहीं होती है और केवल अन्य सहदायिकों के साथ समुदाय का हित निहित है इसलिए परंतुक को ऐसे हित को सम्मिलित करने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता ।"

13. पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने भी **खिदमत सिंह** बनाम **जोगिन्दर सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में अपील में तारीख 12 मार्च, 2010 को दिए गए अपील में एक ऐसे प्रश्न पर विचार किया है जो वर्तमान मामले के प्रश्न के समान है और न्यायालय ने बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा **देवगौंड़ा रायगौंड़ा पाटिल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय और उच्चतम न्यायालय द्वारा **धर्मा शाम राव अगालवे** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय की अवेक्षा करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि दत्तक लिए जाने से पूर्व किसी व्यक्ति द्वारा विरासत में पाई गई संपत्ति केवल हिन्दू दत्तक और भरणपोषण अधिनियम की धारा 12 के अधीन संरक्षित होती है न कि केवल सहदायिक संपत्ति में हित ।

14. उपर्युक्त तथ्यात्मक और विधिक स्थिति पर विचार करने के पश्चात् मेरा यह मत है कि केवल वह संपत्ति जो दत्तक लिए जाने के पूर्व

---

[1] ए. आई. आर. 2001 पटना 125.

[2] ए. आई. 2010 (एन. ओ. सी.) 657 (पी. एंड एच.).

दत्तक बालक में निहित होती है, अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के अधीन उसमें सतत रूप से निहित रहती है और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 1 को जो सहदायिकी का एक सदस्य है, दत्तक से पूर्व सहदायिकी में अविभाजित अंश मिलेगा और उसके नैसर्गिक पिता की सहदायिकी संपत्तियां उसमें निहित नहीं हो सकतीं और ऐसी संपत्तियां अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के अधीन संरक्षित नहीं होंगी । अतः प्रत्यर्थी सं. 1 अपने दत्तक लिए जाने के पश्चात् उक्त पैतृक संपत्ति के विभाजन के लिए हकदार नहीं है । निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करते हुए प्रत्यर्थी के वाद को डिक्री करने में अधिनियम की धारा 12 के परंतुक (ख) के आशय का मूल्यांकन करने में त्रुटि की है कि प्रत्यर्थी के नैसर्गिक पिता के कुटुंब की पैतृक संपत्तियां उसमें निहित हो गई थीं । निचले न्यायालयों के ऐसे निष्कर्ष को ऊपर उल्लिखित विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए कायम नहीं रखा जा सकता ।

15. अत: अपील मंजूर की जाती है और निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है और प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया वाद खारिज किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

रबिन्दरजीत सिंह और सन्स इंजीनियर एंड बिल्डर्स (मैसर्स)

बनाम

अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक (राष्ट्रीय परियोजना निर्माण निगम लि.)

तारीख 1 अगस्त, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति मोहम्मद याकूब मीर

माध्यरथम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 7 और 11 – माध्यरथम् करार – मध्यस्थ की नियुक्ति – जहां कार्य आदेश में सम्मिलित शर्तों वाले दस्तावेज पर दोनों पक्षकारों के हस्ताक्षर हैं, वहां यह माध्यरथम् करार गठित करता है और दोनों पक्षकार इसकी शर्तों का पालन करने के लिए बाध्य हैं, अतः, कार्य आदेश के अनुसरण में मध्यस्थ की नियुक्ति की जानी अपेक्षित है ।

याची ने विभिन्न कार्य से संबंधित निविदा प्रक्रिया में भाग लिया । याची ने यह सूचित किया कि कार्य के लिए 3,01,18,151.00/- (तीन करोड़ एक लाख अट्ठारह हजार एक सौ इकावन रुपए) स्वीकार किया गया जैसा आशय पत्र तारीख 4 अक्तूबर, 2013 में विस्तार से प्रतिबिंबित होता है । संविदा करार का निष्पादन 4 अक्तूबर, 2013 को किया गया । परिणामतः "कार्य आदेश" तारीख 5 सितंबर, 2014 को जारी किया गया । याचिका में यथा निर्दिष्ट विवाद दीफू (असम) में - एल. ओ. आई. सं. 700001/एन.ई.आर. (सी.)/572/1716 तारीख 4 अक्तूबर, 2013 के अधीन पैकेज सं. 507 ए. आर. टी. सी. एंड एस. के लिए संबद्ध सेवा और विकास कार्य के 02 ब्लॉक में सं. 1 भंडारण आवासन (जी.) के निर्माण की बाबत उत्पन्न हुआ । याची ने सी.पी.डब्ल्यू.डी. कार्य मैनुअल 2014 के खंड 35.2(2) के निबंधनानुसार अपने पत्र सं. 31 दिसंबर, 2016 और 14 अप्रैल, 2017 द्वारा "विवाद निपटान समिति" के माध्यम से विवादों के निपटान के लिए प्राधिकारियों से अनुरोध किया, जिसका उत्तर नहीं दिया गया । अंततः तारीख 1 नवंबर, 2017 को याची ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अपने अधिवक्ता के माध्यम से अनुरोध किया, जिसका उत्तर तारीख 7 दिसंबर, 2017 को प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा दिया गया कि संबद्ध अधिवक्ता ने माध्यस्थम् खंड का अवलंब लेने के लिए याची की ओर से अपना प्राधिकार स्थापित करने का कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराया ।

संक्षेप में यह संसूचित किया गया कि केवल संविदा के पक्षकार माध्यस्थम् खंड का अवलंब ले सकते हैं, इसलिए प्राधिकार के अभाव में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अधिवक्ता के अनुरोध को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी मध्यस्थ नियुक्ति करने में असमर्थ हैं । अतः, उच्च न्यायालय के समक्ष यह याचिका फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी इसके प्रति सचेत थे, इसलिए अधिवक्ता के माध्यम से याची द्वारा तामील की गई नोटिस का उत्तर देते समय, उन्होंने पत्र तारीख 7 दिसंबर, 2017 द्वारा याची को यह सूचित किया कि कार्य आदेश के खंड 4 से यह स्पष्ट है कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के साथ कोई कानूनी उपांतरण या उसका पुनः अधिनियमन और तत्समय प्रवृत्त उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध माध्यस्थम् कार्यवाही को लागू होंगे । संविदा के पक्षकार माध्यस्थम् का अवलंब ले सकते हैं । पक्षकारों से 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ज) के अधीन यथा परिभाषित माध्यस्थम् करार का कोई पक्षकार अभिप्रेत है । इन आधारों पर, याची को यह सूचित किया गया कि प्रत्यर्थी याची की ओर से उसके प्राधिकार के अभाव में सुश्री पी. डी. बुझबरुआ, अधिवक्ता के अनुरोध पर मध्यस्थ नियुक्त करने में असमर्थ हैं । प्रत्यर्थियों ने अपने उत्तर में यह आधार नहीं लिया कि कार्य आदेश के खंड 4 में यथा सम्मिलित माध्यस्थम् खंड लागू नहीं होता है । यह उचित ही इंगित किया गया है कि किसी निविदा के संबंध में जहां मूल करार में माध्यस्थम् खंड विद्यमान है वहां कार्य आदेश द्विपक्षीय स्वीकृति की अपेक्षा न करते हुए, किसी शर्त के बिना जारी किया जाता है, ऐसी स्थिति का समर्थन मैसर्स शरीन नानग्रिम हिल्स, शिलांग के पक्ष में एक अन्य कार्य के संबंध में प्रत्यर्थियों द्वारा जारी एक अन्य दस्तावेज से होता है । प्रस्तुत मामले में, यद्यपि संविदा के विशेष शर्तों में "माध्यस्थम् खंड" हटाया गया था, किंतु बाद में कार्य आदेश जारी करते समय कुछ शर्तें सम्मिलित की गई थीं जिसमें मध्यस्थ को विवादों का निर्देश सम्मिलित हैं । कार्य आदेश पर दोनों पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किए गए, का यह वस्तुतः अर्थ है कि उसमें सम्मिलित की गई शर्तें करार की प्रकृति की हैं, इसलिए दोनों पक्षकारों ने कार्य आदेश के प्रत्येक पृष्ठ पर हस्ताक्षर किए । दोनों पक्षकारों द्वारा पालन किए जाने हेतु उसमें सम्मिलित शर्तों को ध्यान में रखते हुए, दोनों पक्षकारों द्वारा कार्य आदेश पर हस्ताक्षर किया जाना "माध्यस्थम् करार" करता है । "माध्यस्थम् करार" को निर्वचन करने की व्याप्ति उपरोक्त निर्दिष्ट 1996

की अधिनियम की धारा 7 के निबंधनों में व्यापक है, इसलिए कार्य आदेश के खंड 4 को "करार" गठित न करने वाला कहना भ्रामक है । जब दोनों पक्षकारों ने उसमें सम्मिलित संविदागत शर्तों को ध्यान में रखते हुए कार्य आदेश पर हस्ताक्षर किए तो मूल करार के पूरक "करार" की प्रकृति को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता । जब संविदा के साधारण शर्तों और संविदा के विशेष शर्तों के बीच विरोध हो तो संविदा की विशेष शर्तें अभिभावी होती हैं । उनके अनुसार कार्य आदेश का खंड 4 संविदा के साधारण शर्तों के भीतर आता है अतः संविदा के विशेष शर्तों के प्रतिकूल होने के कारण अभिभावी नहीं होंगी । ऐसा तर्क बिल्कुल अस्वीकार्य है क्योंकि माध्यस्थम् खंड मूलतः संविदा के विशेष निबंधनों और शर्तों में था, जिसे हटाया गया था । "कार्य आदेश" के खंड 4 में माध्यस्थम् खंड को वैसे ही सम्मिलित किया गया है जो संविदा के विशेष निबंधनों और शर्तों के भीतर स्वतः आएगा । अतः, यह दलील कि संविदा के विशेष निबंधनों और शर्तों के खंड 4 के अनुसार, कार्य आदेश के शर्त सं. 4 के निबंधनों में सम्मिलित माध्यस्थम् खंड की उपेक्षा की जाए क्योंकि संविदा की विशेष शर्तें संविदा के साधारण शर्तों पर अभिभावी होंगी, नामंजूर किया जाना चाहिए । उपरोक्त कारणों से, याचिका की संधार्यता के संबंध में प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा उठाए गए आक्षेप विधि मान्य नहीं हैं और नामंजूर किए जाते हैं । प्रत्यर्थियों ने वस्तुतः पत्र तारीख 7 दिसंबर, 2017 द्वारा याची को सूचित करते समय इस आधार पर मध्यस्थ को नियुक्त करने से इनकार किया कि माध्यस्थम् का अनुरोध याची के अधिवक्ता द्वारा किसी प्राधिकार के बिना किया गया था । प्रत्यर्थियों के दृष्टिकोण से स्पष्टतः यह विवक्षित होता है कि उन लोगों ने मध्यस्थ नियुक्त करने से इनकार किया । एक बार याची की ओर से अधिवक्ता द्वारा माध्यस्थम् के लिए अनुरोध भेजे जाने पर, इसे किसी प्राधिकार के बिना होना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह स्वयं अनुरोध पत्र नहीं भेज सकती । यह तभी हो सकता है जब वह याची द्वारा प्राधिकृत किया गया हो । उसने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध किया । ऐसा होने पर विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया जाना चाहिए और इस प्रकार मध्यस्थ नियुक्त किया जाना अपेक्षित है । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को मध्यस्थों के नाम देने के लिए कहा गया, उन लोगों ने दो सप्ताह का समय मांगा, जो मंजूर किया हो । मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए 16 अगस्त, 2018 को मामले को सूचीबद्ध करें । (पैरा 21, 22, 23, 24, 25, 26, 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) 5 एस. सी. सी. 719 : **जगदीश चंदर** बनाम **रमेश चंदर और अन्य** ;	10
[2005]	(2005) 11 एस. सी. सी. 197 : **राजस्थान राज्य** बनाम **नव भारत निर्माण कंपनी** ;	12
[1999]	(1999) 2 एस. सी. सी. 166 : **भारत भूषण बंसल** बनाम **उत्तर प्रदेश लघु उद्योग निगम लि.** ;	13
[1980]	(1980) 2 एस. सी. सी. 341 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **टिप्पर चंद** ।	14

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2017 की माध्यस्थम् याचिका सं. 8.

1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 11 के अधीन याचिका ।

याची की ओर से	सुश्री पी. डी. बजरबरुआ, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से	श्री एस. सेन गुप्ता
प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से	सुश्री ए. पॉल

मुख्य न्यायमूर्ति मोहम्मद याकूब मीर – माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1996 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 11 के अधीन यह याचिका मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए फाइल की गई है ।

2. 1996 के अधिनियम की धारा 11 की उपधारा (10) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, इस न्यायालय ने "मेघालय उच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति" नामक स्कीम को अधिसूचित किया । उक्त स्कीम के अनुसार मध्यस्थ की नियुक्ति के अनुरोध पर विचार किया जाना चाहिए ।

3. प्रत्यर्थी सं. 2 के विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक इस आधार पर मध्यस्थ की नियुक्ति की याचिका की संधार्यता का विरोध किया कि "संविदा करार" में "माध्यस्थम् खंड" नहीं है ।

4. इस याचिका के उचित निपटान के लिए संक्षिप्त तथ्यात्मक विवरण का उल्लेख करना लाभप्रद होगा ।

5. याची ने विभिन्न कार्य से संबंधित निविदा प्रक्रिया में भाग लिया । याची ने यह सूचित किया कि कार्य के लिए 3,01,18,151.00/- (तीन करोड़ एक लाख अट्ठारह हजार एक सौ इकावन रुपए) स्वीकार किया गया जैसा आशय पत्र तारीख 4 अक्तूबर, 2013 में विस्तार से प्रतिबिंबित होता है । संविदा करार का निष्पादन 4 अक्तूबर, 2013 को किया गया । परिणामतः "कार्य आदेश" तारीख 5 सितंबर, 2014 को जारी किया गया ।

6. याचिका में यथा निर्दिष्ट विवाद दीफू (असम) में - एल. ओ. आई. सं. 700001/एन.ई.आर. (सी.)/572/1716 तारीख 4 अक्तूबर, 2013 के अधीन पैकेज सं. 507 ए. आर. टी. सी. एंड एस. के लिए संबद्ध सेवा और विकास कार्य के 02 ब्लॉक में सं. 1 भंडारण आवासन (जी.) के निर्माण की बाबत उत्पन्न हुआ । याची ने सी.पी.डब्ल्यू.डी. कार्य मैनुअल 2014 के खंड 35.2(2) के निबंधनानुसार अपने पत्र सं. 31 दिसंबर, 2016 और 14 अप्रैल, 2017 द्वारा "विवाद निपटान समिति" के माध्यम से विवादों के निपटान के लिए प्राधिकारियों से अनुरोध किया, जिसका उत्तर नहीं दिया गया । अंततः तारीख 1 नवंबर, 2017 को याची ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अपने अधिवक्ता के माध्यम से अनुरोध किया, जिसका उत्तर तारीख 7 दिसंबर, 2017 को प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा दिया गया कि संबद्ध अधिवक्ता ने माध्यस्थम् खंड का अवलंब लेने के लिए याची की ओर से अपना प्राधिकार स्थापित करने का कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराया । संक्षेप में यह संसूचित किया गया कि केवल संविदा के पक्षकार माध्यस्थम् खंड का अवलंब ले सकते हैं, इसलिए प्राधिकार के अभाव में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अधिवक्ता के अनुरोध को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी मध्यस्थ नियुक्ति करने में असमर्थ हैं । अतः यह याचिका फाइल की गई ।

7. प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि याचिका संधार्य नहीं है क्योंकि मूल संविदा करार में माध्यस्थम् खंड को हटा दिया गया था । इस संबंध में संविदा के विशेष निबंधनों और शर्तों का उपबंध करने वाले निविदा दस्तावेज के पृष्ठ 50 को निर्दिष्ट किया । खंड 18 इस प्रकार है :–

"18. माध्यस्थम् : हटाया गया ।"

8. निवेदन का समर्थन करने के लिए, दीफू (असम) में - एल. ओ.

आई. सं. 700001/एन.ई.आर. (सी.)/572/1716 तारीख 4 अक्तूबर, 2013 के अधीन पैकेज सं. 507 ए. आर. टी. सी. एंड एस. के लिए संबद्ध सेवा और विकास कार्य के 02 ब्लॉक में सं. 1 भंडारण आवासन (जी.) के निर्माण की बाबत न्यायालय के माध्यम से निवारण के पूर्व शिलांग के विवाद प्रतितोष समिति के माध्यम से विवादों के प्रतितोष का अनुरोध करते हुए याची द्वारा तारीख 14 अप्रैल, 2017 को एन. पी. सी. सी. के आंचलिक प्रबंधक को भेजे गए पत्र को निर्दिष्ट किया । पत्र में यह भी उल्लेख है कि संविदा के अधीन पक्षकारों के बीच किसी विवाद के प्रतितोष का माध्यस्थम् खंड हटाया गया था और संविदा के अनुसार शिलांग के न्यायालय को ही किसी विवाद को सुलझाने की अधिकारिता थी जो संविदा के विशेष निबंधनों और शर्तों के पृष्ठ 52 पर खंड 18 और 18.1 में देखा जा सकता है । आगे यह कहा गया कि सी.पी.डब्ल्यू.डी. कार्य मैनुअल, 2014 के खंड 35.2(2) के निबंधनानुसार याची अन्य उपाय का सहारा नहीं ले सकता जब तक विवाद प्रतितोष समिति के चैनल के माध्यम से प्रतितोष को निःशेष नहीं कर दिया जाता ।

9. उन्होंने आगे यह दलील दी कि "कार्य आदेश" निविदा की स्वीकृति और एल. ओ. आई. के जारी किए जाने के पश्चात् मात्र एक अनुवर्ती कार्रवाई है अतः तारीख 5 सितंबर, 2004 के कार्य आदेश की शर्त सं. 4 का अवलंब माध्यस्थम् की नियुक्ति के लिए नहीं लिया जा सकता चूंकि खंड 4 के पूर्व क्रम में "संविदा में अन्यथा उपबंधित के सिवाय" शब्द आते हैं । संविदा के विशेष निबंधनों और शर्तों में, "माध्यस्थम् खंड" हटाया गया था, इसलिए, विवाद मध्यस्थ को निर्दिष्ट करने की कोई गुंजाइश नहीं है ।

10. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि संविदा में माध्यस्थम् खंड को बाद में हटाया गया, इसे सम्मिलित नहीं किया जा सकता, यदि इसे सम्मिलित किया जाता है तो यह करार गठित नहीं करेगा । अपनी दलील का समर्थन करते हुए **जगदीश चंदर** बनाम **रमेश चंदर और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया, किंतु उक्त निर्णय प्रत्यर्थियों को कोई सहायता नहीं करता क्योंकि प्रतिवेदित निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि माध्यस्थम् खंड या पारस्परिक सहमति के अभाव में मध्यस्थ की नियुक्ति अनुज्ञेय नहीं है । उक्त निर्णय के पैरा 11 को उद्धृत करना सुसंगत है :–

[1] (2007) 5 एस. सी. सी. 719.

"11. अधिनियम की धारा 7 के अधीन यथा परिभाषित माध्यस्थम् करार का अस्तित्व अधिनियम की धारा 11 के अधीन मुख्य न्यायमूर्ति या उसके पदाविहित द्वारा मध्यस्थ/माध्यस्थम् अभिकरण की नियुक्ति की शक्ति का प्रयोग करने की पूर्ववर्ती शर्त है । माध्यस्थम् करार या पारस्परिक सहमति के अभाव में पक्षकारों के बीच विवाद का निपटान करने के लिए मध्यस्थ की नियुक्ति करना अनुज्ञेय नहीं है । दिल्ली उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का अभिहित माध्यस्थम् करार के अभाव में मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं कर सकता ।"

11. इस मामले में पक्षकारों की पारस्परिक सहमति से कार्य आदेश में संविदा की शर्तें सम्मिलित की गई थी और उसमें सम्मिलित शर्तों वाले कार्य आदेश के प्रत्येक पृष्ठ पर दोनों पक्षकारों ने हस्ताक्षर किए थे, जिसमें माध्यस्थम् खंड सम्मिलित हैं ।

12. विद्वान् काउंसेल ने यह प्रक्षेपित किया कि माध्यस्थम् के प्रतिनिर्देश सहित कार्य आदेश में सम्मिलित शर्तें माध्यस्थम् करार गठित नहीं करते, इसके समर्थन में **राजस्थान राज्य** बनाम **नव भारत निर्माण कंपनी**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया । प्रतिवेदित निर्णय में कार्य आदेश के खंड 4 के समरूप कोई ऐसी शर्त नहीं थी । जब ऐसी स्थिति है तो तथ्यों के आधार पर प्रतिवेदित निर्णय वर्तमान मामले में लागू किए जाने योग्य नहीं है ।

13. **भारत भूषण बंसल** बनाम **उत्तर प्रदेश लघु उद्योग निगम लि.**[2] वाले मामले के निर्णय में, खंड 22 को निर्दिष्ट करते हुए, इसमें व्यक्ततः या विवक्षितः माध्यस्थम् करार नहीं था जो वस्तुतः वर्तमान मामले की स्थिति को लागू नहीं होता, क्योंकि कार्य आदेश का खंड 4 स्पष्टतः मध्यस्थ को विवादों के निर्देश के लिए करार गठित करता है ।

14. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **टिप्पर चंद**[3] वाले मामले के निर्णय से पैरा 6 उद्धृत करना लाभकर है :–

"6. जम्मू और कश्मीर मामले में, सुसंगत खंड को इन शब्दों में व्यक्त किया गया –

ठेकेदार और विभाग के बीच किसी विवाद के लिए, पी.

---

[1] (2005) 11 एस. सी. सी. 197.

[2] (1999) 2 एस. सी. सी. 166.

[3] (1980) 2 एस. सी. सी. 341.

> डब्ल्यू. डी., जम्मू और कश्मीर के मुख्य अभियंता का विनिश्चय अंतिम होगा और ठेकेदार पर आबद्धकर होगा ।

इस खंड की भाषा तत्वतः वर्तमान मामले के खंड की भाषा से भिन्न है और हमारी राय में, माध्यस्थम् करार के समान होने के रूप में सही निर्वचित किया गया है । इस संबंध में 'ठेकेदार और विभाग के बीच कोई विवाद' शब्दों का प्रयोग महत्वपूर्ण है । ऐसा ही खंड **राम लाल** वाले मामले में है, जो इस प्रकार है –

> विवाद की दशा में मामला सर्किल के अधीक्षण अभियंता को निर्दिष्ट किया जाएगा जिसका आदेश अंतिम होगा ।
>
> हम मुश्किल से यह कह सकते हैं कि यह खंड न केवल संविदा के पक्षकारों के बीच विवाद को निर्दिष्ट करता है बल्कि विनिर्दिष्टतः अधीक्षण अभियंता को निर्देश का भी उल्लेख करता है, इसलिए माध्यस्थम् करार के रूप में उचित ही निर्वचित किया गया अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए ।"

15. वर्तमान मामले में उक्त विधि को लागू करते हुए, कार्य आदेश का खंड 4 स्पष्टतः मध्यस्थ को विवाद के प्रतिनिर्देश का उपबंध करता है । जब यह इस प्रकार है तो आशय स्पष्ट है और इसे माध्यस्थम् करार के रूप में निर्वचित किया जाना चाहिए ।

16. याची के विद्वान् काउंसेल का यह निवेदन है कि कार्य आदेश में 11 शर्तें हैं और दोनों पक्षकारों ने कार्य आदेश पर हस्ताक्षर किए हैं । कार्य आदेश की शर्त सं. 4 स्पष्टतः प्रबंध निदेशक, एन. पी. सी. सी. लिमिटेड द्वारा नियुक्त किए गए एक मात्र मध्यस्थ को विवादों को निर्दिष्ट करने का उपबंध करता है । वस्तुतः माध्यस्थम् सम्मिलित किया गया है ।

17. आशय पत्र तारीख 4 अक्तूबर, 2013 को जारी किया गया, जिसके पश्चात् करार निष्पादित किया गया । इसके पश्चात् "कार्य आदेश" में सम्मिलित शर्तों का पालन करने के लिए पक्षकारों को आबद्धकर बनाते हुए, कार्य आदेश जारी किया गया, क्योंकि दोनों पक्षकारों ने इस पर हस्ताक्षर किए । सारतः, यही संविदा का भार गठित करेगा । शर्त सं. 4 में प्रयुक्त शब्द "संविदा में अन्यथा उपबंधित के सिवाय" माध्यस्थम् खंड को लागू नहीं हैं ।

18. उन्होंने आगे, यह निवेदन किया कि एम. पी. सी. सी. लिमिटेड ने अन्य कार्य आदेश निष्पादित करते समय, जिसमें निविदा दस्तावेज हैं,

माध्यस्थम् खंड में कार्य आदेश की शर्तें सम्मिलित नहीं हैं । बिंदु को स्पष्ट करते हुए, उन्होंने शिलांग के मैसर्स शरीन नानग्रिम हिल्स को आबंटित किसी अन्य कार्य से संबंधित अन्य निविदा दस्तावेज को पेश किया, उस निविदा दस्तावेज में संविदा की अन्य विशेष शर्तों के साथ माध्यस्थम् खंड विद्यमान था । कार्य आदेश एकतरफा जारी किया गया है, क्योंकि द्विपक्षीय स्वीकृति की अपेक्षा वाली कोई शर्त उसमें सम्मिलित नहीं थी ।

19. द्विपक्षीय होते हुए, याची के पक्ष में जारी "कार्य आदेश" में सम्मिलित शर्तों का मूल करार के पूरक करार के रूप में अर्थ निकाला जाएगा जिसमें माध्यस्थम् खंड सम्मिलित हों ।

20. माध्यस्थम् खंड के सामने "संविदा के विशेष निबंधन और शर्त' शीर्ष के अधीन निविदा दस्तावेज के पृष्ठ 50 पर यह - "हटाया गया" के रूप में अभिलिखित किया गया है । किंतु जारी "कार्य आदेश" में माध्यस्थम् खंड सम्मिलित किया गया है, जो प्रभावतः संविदा के विशेष निबंधन और शर्त का भाग गठित करेगा । कार्य आदेश की शर्त सं. 4 के शब्द "संविदा में यथा उपबंधित के सिवाय यह कार्य के विनिर्देश, संविदा डिजाइन, रूपरेखा और अनुमान अनुदेश, प्रयुक्त कर्म-कौशल की गुणता और सामग्री से संबंधित है", जिसके लिए, यदि मूल संविदा में कुछ प्रतिकूल उपबंधित नहीं है तो उन विवादों को मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए । शर्त सं. 4 को शर्त सं. 3 के साथ संयुक्त रूप से पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें यह उपबंध है कि कार्य का विशुद्धतः निष्पादन विनिर्देशों के अनुसार किया जाएगा ।

21. यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी इसके प्रति सचेत थे, इसलिए अधिवक्ता के माध्यम से याची द्वारा तामील की गई नोटिस का उत्तर देते समय, उन्होंने पत्र तारीख 7 दिसंबर, 2017 द्वारा याची को यह सूचित किया कि कार्य आदेश के खंड 4 से यह स्पष्ट है कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के साथ कोई कानूनी उपांतरण या उसका पुनः अधिनियमन और तत्समय प्रवृत्त उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध माध्यस्थम् कार्यवाही को लागू होंगे । संविदा के पक्षकार माध्यस्थम् का अवलंब ले सकते हैं । पक्षकारों से 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ज) के अधीन यथा परिभाषित माध्यस्थम् करार का कोई पक्षकार अभिप्रेत है । इन आधारों पर, याची को यह सूचित किया गया कि प्रत्यर्थी याची की ओर से उसके प्राधिकार के अभाव में सुश्री पी. डी. बुझबरुआ, अधिवक्ता के अनुरोध पर मध्यस्थ नियुक्त करने में असमर्थ हैं । प्रत्यर्थियों ने अपने उत्तर

में यह आधार नहीं लिया कि कार्य आदेश के खंड 4 में यथा सम्मिलित माध्यस्थम् खंड लागू नहीं होता है ।

22. यह उचित ही इंगित किया गया है कि किसी निविदा के संबंध में जहां मूल करार में माध्यस्थम् खंड विद्यमान है वहां कार्य आदेश द्विपक्षीय स्वीकृति की अपेक्षा न करते हुए, किसी शर्त के बिना जारी किया जाता है, ऐसी स्थिति का समर्थन मैसर्स शरीन नानग्रिम हिल्स, शिलांग के पक्ष में एक अन्य कार्य के संबंध में प्रत्यर्थियों द्वारा जारी एक अन्य दस्तावेज से होता है । प्रस्तुत मामले में, यद्यपि संविदा के विशेष शर्तों में "माध्यस्थम् खंड" हटाया गया था, किंतु बाद में कार्य आदेश जारी करते समय कुछ शर्तें सम्मिलित की गई थीं जिसमें मध्यस्थ को विवादों का निर्देश सम्मिलित हैं । कार्य आदेश पर दोनों पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किए गए, का यह वस्तुतः अर्थ है कि उसमें सम्मिलित की गई शर्तें करार की प्रकृति की हैं, इसलिए दोनों पक्षकारों ने कार्य आदेश के प्रत्येक पृष्ठ पर हस्ताक्षर किए । 1996 की अधिनियम की धारा 7 में यह परिकल्पित है कि "माध्यस्थम् करार" का क्या अभिप्राय है । धारा 7 उद्धृत किए जाने योग्य है :–

"7. **माध्यस्थम् करार** – (1) इस भाग में 'माध्यस्थम् करार' से पक्षकारों द्वारा ऐसे सभी या कतिपय विवाद माध्यस्थम् के लिए निवेदित करने के लिए किया गया करार अभिप्रेत है जो परिनिश्चित विधि संबंध, चाहे संविदात्मक हो या न हो, की बाबत उनके बीच उद्भूत हुए हों या हो सकते हों ।

(2) माध्यस्थम् करार, किसी संविदा में माध्यस्थम् खंड के रूप में या किसी पृथक् करार के रूप में हो सकता है ।

(3) माध्यस्थम् करार लिखित रूप में होगा ।

(4) माध्यस्थम् करार लिखित रूप में है, यदि वह, –

(क) पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित किसी दस्तावेज में ;

(ख) पत्रों के आदान-प्रदान, टेलेक्स, तार या दूरसंचार के ऐसे अन्य साधनों में, जो करार के अभिलेख की व्यवस्था करते हैं, या

(ग) दावे और प्रतिरक्षा के कथनों के आदान-प्रदान में, जिनमें करार की विद्यमानता का एक पक्षकार द्वारा अभिकथन किया गया है और दूसरे पक्षकार द्वारा उससे इनकार नहीं किया

गया है ।

अंतर्विष्ट हैं ।

(5) माध्यस्थम् खंड वाले किसी दस्तावेज के प्रति किसी संविदा में निर्देश, माध्यस्थम् करार का गठन करेगा, यदि संविदा लिखित रूप में है और ऐसा है जो उस माध्यस्थम् खंड को संविदा का भाग बनाता है ।"

23. दोनों पक्षकारों द्वारा पालन किए जाने हेतु उसमें सम्मिलित शर्तों को ध्यान में रखते हुए, दोनों पक्षकारों द्वारा कार्य आदेश पर हस्ताक्षर किया जाना "माध्यस्थम् करार" करता है ।

24. "माध्यस्थम् करार" को निर्वचन करने की व्याप्ति उपरोक्त निर्दिष्ट 1996 की अधिनियम की धारा 7 के निबंधनों में व्यापक है, इसलिए कार्य आदेश के खंड 4 को "करार" गठित न करने वाला कहना भ्रामक है ।

25. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल की यह दलील है कि कार्य आदेश मुद्रित प्ररूप में है । संक्षेप में, उनके अनुसार यह निविदा दस्तावेजों का प्रारूपिक भाग है अतः, यह पृथक् करार गठित नहीं करता, भ्रामक है । जब दोनों पक्षकारों ने उसमें सम्मिलित संविदागत शर्तों को ध्यान में रखते हुए कार्य आदेश पर हस्ताक्षर किए तो मूल करार के पूरक "करार" की इसकी प्रकृति को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता ।

26. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल की अगली दलील यह है कि जब संविदा के साधारण शर्तों और संविदा के विशेष शर्तों के बीच विरोध हो तो संविदा की विशेष शर्तें अभिभावी होती हैं । उनके अनुसार कार्य आदेश का खंड 4 संविदा के साधारण शर्तों के भीतर आता है अतः संविदा के विशेष शर्तों के प्रतिकूल होने के कारण अभिभावी नहीं होंगी । ऐसा तर्क बिल्कुल अस्वीकार्य है क्योंकि माध्यस्थम् खंड मूलतः संविदा के विशेष निबंधनों और शर्तों में था, जिसे हटाया गया था । "कार्य आदेश" के खंड 4 में माध्यस्थम् खंड को वैसे ही सम्मिलित किया गया है जो संविदा के विशेष निबंधनों और शर्तों के भीतर स्वतः आएगा । अतः, यह दलील कि संविदा के विशेष निबंधनों और शर्तों के खंड 4 के अनुसार, कार्य आदेश के शर्त सं. 4 के निबंधनों में सम्मिलित माध्यस्थम् खंड की उपेक्षा की जाए क्योंकि संविदा की विशेष शर्तें संविदा के साधारण शर्तों पर अभिभावी होंगी, नामंजूर किया जाना चाहिए ।

27. वस्तुतः कार्य आदेश का खंड 4, 1996 के अधिनियम की धारा 7 के अर्थान्तर्गत "करार" गठित करता है । इस बाबत याची के विद्वान काउंसेल ने उचित ही भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 14 नवंबर, 2011 को विनिश्चित 2010 की माध्यस्थम् याचिका सं. 5 में "पावरटेक वर्ल्डवाइड लि. बनाम डेलबीन इंटरनेशनल जनरल ट्रेडिंग एल.एल.सी. " वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया । निर्णय के पैरा 18 को उद्धृत करना सुसंगत है :–

> "18. विचारार्थ अगला प्रश्न यह है कि माध्यस्थम् करार के पक्षकारों के बीच संविदा का अर्थान्वयन निकालते समय न्यायालय का क्या दृष्टिकोण होना चाहिए । रिक्मर्स वर्वाल्टंग जी.एम.बी.एच. **बनाम** इंडियन ऑयल कार्पोरेशन लि. [(1999) 1 एस. सी. सी. 1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि 'यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि क्या पक्षकारों के बीच कोई मतैक्य था, जो उनके बीच आबद्धकर संविदा का सृजन कर सकता हो, पत्राचार का अर्थान्वयन करना न्यायालय का कर्तव्य है । जब तक पत्राचार से असंदिग्धतः और स्पष्टतः यह प्रकट न हो सकता हो कि पक्षकार शर्तों के संबंध में एकमत थे, यह नहीं कहा जा सकता कि करार पत्राचार के माध्यम से उनके बीच अस्तित्व में आया ।' अब उनिस्सी (इंडिया) प्राइवेट लि. **बनाम** पोस्ट ग्रेजुएट इंस्ट्टीच्यूट आफ मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च [(2009) 1 एस. सी. सी. 107] वाले मामले में जहां अपीलार्थी ने अपना निविदा प्रस्ताव दिया था, जो प्रत्यर्थी द्वारा स्वीकार किया गया था और निविदा में माध्यस्थम् खंड था, वहां इस न्यायालय ने मामले के तथ्यों, अधिनियम की धारा 7 के उपबंधों और उसके द्वारा अधिकथित सिद्धांतों पर विचार करते हुए, यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि, कोई औपचारिक करार निष्पादित नहीं किया गया था, किंतु माध्यस्थम् खंड वाले निविदा दस्तावेजों को ध्यान में रखते हुए, माध्यस्थम् को निर्देश उचित था । शक्ति भोग फूड लिमिटेड **बनाम** कोला शिपिंग लिमिटेड [(2009) 2 एस. सी. सी. 134] वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 7 के अधीन बनाए गए उपबंधों से, पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित दस्तावेज या ई-मेल, पत्र, टेलेक्स, टेलीग्राम या संसूचना के अन्य माध्यम के आदान-प्रदान जो करार का अभिलेख हो, से माध्यस्थम् करार की विद्यमान्यता का निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।"

28. उक्त निर्णय के पैरा 21 के निम्नलिखित भाग को उद्धृत करना

भी सुसंगत होगा :–

"21. .....किंतु याची की याचिका और क्रय संविदा के विशिष्ट निर्देश के साथ पक्षकारों के बीच पत्राचार और सहवर्ती परिस्थितियों को संयुक्त रूप से पढ़े जाने पर, यदि यह स्पष्ट होता है कि पक्षकारों के बीच लिखित रूप में करार था और अधिनियम के उपबंधों के अनुसार मध्यस्थ को इन मामलों को निर्दिष्ट करने के उनके आशय में मतैक्य था .... तारीख 27 जून, 2008 के पत्र द्वारा इस पत्र का उत्तर देते हुए, प्रत्यर्थी ने न तो माध्यस्थम् खंड के अस्तित्व से इनकार किया और न ही आबद्धकर प्रकृति को स्वीकार किया ।"........ "इस पत्र से निश्चायक रूप से यह साबित होता है कि प्रत्यर्थी ने पक्षकारों के बीच माध्यस्थम् करार के अस्तित्व को स्वीकार किया था और पक्षकारों के बीच विवादों के अवधारण के लिए सामान्य/एकमात्र मध्यस्थ को नियुक्त करने के विचार पर सहमति दी थी । ....."

29. उपरोक्त कारणों से, याचिका की संधार्यता के संबंध में प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा उठाए गए आक्षेप और विधि मान्य नहीं हैं और इस प्रकार नामंजूर किया जाता है ।

30. प्रत्यर्थियों ने वस्तुतः पत्र तारीख 7 दिसंबर, 2017 द्वारा याची को सूचित करते समय इस आधार पर मध्यस्थ को नियुक्त करने से इनकार किया कि माध्यस्थम् का अनुरोध याची के अधिवक्ता द्वारा किसी प्राधिकार के बिना किया गया था । प्रत्यर्थियों के दृष्टिकोण से स्पष्टतः यह विवक्षित होता है कि उन लोगों ने मध्यस्थ नियुक्त करने से इनकार किया । एक बार याची की ओर से अधिवक्ता द्वारा माध्यस्थम् के लिए अनुरोध भेजे जाने पर, इसे किसी प्राधिकार के बिना होना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह स्वयं अनुरोध पत्र नहीं भेज सकती । यह तभी हो सकता है जब वह याची द्वारा प्राधिकृत किया गया हो । उसने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध किया । ऐसा होने पर विवाद माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया जाना चाहिए और इस प्रकार मध्यस्थ नियुक्त किया जाना अपेक्षित है । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को मध्यस्थों के नाम देने के लिए कहा गया, उन लोगों ने दो सप्ताह का समय मांगा, जो मंजूर किया हो । मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए 16 अगस्त, 2018 को मामले को सूचीबद्ध करें ।

याचिका मंजूर की गई ।

पा.

अनिल अग्रवाल

बनाम

विकास अग्रवाल

तारीख 9 अक्तूबर, 2017

न्यायमूर्ति इन्द्रजीत सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 38, नियम 5 – उधार दी गई धनराशि को वसूल करने के लिए वाद – वादी द्वारा वाद के साथ प्रतिवादी के विरुद्ध संपत्ति अंतरित न किए जाने हेतु आवेदन – न्यायालय द्वारा प्रतिवादी को प्रतिभूति दाखिल करने के लिए निदेश – प्रतिवादी द्वारा वाद में समनों की तामील के तुरन्त पश्चात् संपत्ति का अन्तरण – विचारण न्यायालय द्वारा वादी के हक में प्रथमदृष्ट्या राय गठित करना – प्रतिवादी द्वारा अपील में चुनौती – विचारण न्यायालय द्वारा संपत्ति कुर्क किए जाने का आदेश उचित है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि वादी-प्रत्यर्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 37 के अधीन अपीलार्थी-प्रतिवादी के विरुद्ध 5 लाख 30 हजार रुपए की वसूली के लिए गणेश मार्किट, अलवर स्थित दुकान सं. 6 और महादेव काम्पलैक्स, सिद्धिपुरा, अलवर स्थित दुकान सं. 3 किसी व्यक्ति को अंतरित करने से रोकने के लिए स्थायी व्यादेश हेतु विचारण न्यायालय के समक्ष एक सिविल वाद फाइल किया था । वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने वादी-प्रत्यर्थी से 5 लाख रुपए की धनराशि उधार ली थी और इसके पश्चात् वादी-प्रत्यर्थी ने कारपोरेशन बैंक अलवर शाखा का एक चैक तारीख 17 सितंबर, 2016 को अपीलार्थी-प्रतिवादी के सुपुर्द किया था । उक्त धनराशि 12 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 6 मास की अवधि के लिए दी गई थी । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने उक्त धनराशि बैंक से प्राप्त कर ली थी और इसके पश्चात् 6 मास की अवधि बीत जाने पर जब वादी ने उक्त धनराशि वापस मांगी तो अपीलार्थी-प्रतिवादी ने धनराशि को वापस करने से इनकार कर दिया । वादी-प्रत्यर्थी ने वाद के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 38, नियम 8

और आदेश 39, नियम 1 और 2 तथा धारा 51 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था । अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील अपर जिला न्यायाधीश सं. 2, अलवर द्वारा 2017 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 46/17 में तारीख 25 अप्रैल, 2017 को पारित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का परिशीलन करने के पश्चात् न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में इस कारण से कोई अवैधता नहीं है कि प्रथमतः विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी-प्रतिवादी की सदभावनाओं पर विचार किया है जैसा कि आदेश के पैरा 5 में उल्लिखित है, जिससे यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी ने आवेदन में उल्लिखित संपत्तियां वाद में समनों की तामील के तुरन्त पश्चात् विक्रीत की थीं ; द्वितीयतः यदि अपीलार्थी 5 लाख 50 हजार रुपए की समुचित प्रतिभूति प्रस्तुत करता है तो अपीलार्थी के साथ कोई अन्याय नहीं होगा जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा निदेश किया गया है ; तृतीयतः विचारण न्यायालय ने आदेश पारित करते समय प्रथमदृष्ट्या वादी के हक में राय गठित की है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित उक्त निर्णय को दृष्टिगत करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत एक संभव मत है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील तथा रोक के लिए फाइल किया गया आवेदन खारिज किया जाता है । (पैरा 8, 9 और 10)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1170 : **राजेन्द्रन और अन्य** बनाम **शंकर सुंदरम और अन्य** ।	6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की एकल न्यायपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 2727.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री जगमोहन भरवाज और संजय शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री मोहित गुप्ता

न्यायमूर्ति इन्द्रजीत सिंह – अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील अपर जिला न्यायाधीश सं. 2, अलवर द्वारा 2017 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 46/17 में तारीख 25 अप्रैल, 2017 को पारित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि वादी-प्रत्यर्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 37 के अधीन अपीलार्थी-प्रतिवादी के विरुद्ध 5 लाख 30 हजार रुपए की वसूली के लिए गणेश मार्किट, अलवर स्थित दुकान सं. 6 और महादेव काम्पलैक्स, सिद्धिपुरा, अलवर स्थित दुकान सं. 3 किसी व्यक्ति को अंतरित करने से रोकने के लिए स्थायी व्यादेश हेतु विचारण न्यायालय के समक्ष एक सिविल वाद फाइल किया था । वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने वादी-प्रत्यर्थी से 5 लाख रुपए की धनराशि उधार ली थी और इसके पश्चात् वादी-प्रत्यर्थी ने कारपोरेशन बैंक अलवर शाखा का एक चैक तारीख 17 सितंबर, 2016 को अपीलार्थी-प्रतिवादी के सुपुर्द किया था । उक्त धनराशि 12 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 6 मास की अवधि के लिए दी गई थी । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने उक्त धनराशि बैंक से प्राप्त कर ली थी और इसके पश्चात् 6 मास की अवधि बीत जाने पर जब वादी ने उक्त धनराशि वापस मांगी तो अपीलार्थी-प्रतिवादी ने धनराशि को वापस करने से इनकार कर दिया । वादी-प्रत्यर्थी ने वाद के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 38, नियम 8 और आदेश 39, नियम 1 और 2 तथा धारा 51 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था ।

3. अपीलार्थी-प्रतिवादी ने वादी-प्रत्यर्थी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 तथा धारा 151 के साथ पठित आदेश 38, नियम 5 के अधीन प्रस्तुत किए गए आवेदन का उत्तर फाइल किया । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने आवेदन के उत्तर में वादी-प्रत्यर्थी द्वारा वादपत्र में तथा स्थायी व्यादेश के आवेदन में किए गए प्रकथनों से इनकार किया । विशेष रूप से यह उल्लेख किया गया है कि वादी-प्रत्यर्थी अपीलार्थी-प्रतिवादी का निकट का नातेदार है और उसने कारबार की आवश्यकता के लिए अपीलार्थी-प्रतिवादी की पत्नी से 5 लाख रुपए की धनराशि उधार ली थी । वादी-प्रत्यर्थी धनराशि वापस करने में विफल रहा और बार-बार अनुरोध

करने पर वादी-प्रत्यर्थी ने अभिकथित चैक अपीलार्थी के सुपुर्द किया । प्रतिवादी-अपीलार्थी ने चैक प्राप्त करने के समय चैक के बारे में पूछा क्योंकि चैक अपीलार्थी की फर्म के नाम में आहरित था और तब वादी-प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को यह बताया कि यदि आप धनराशि वापस लेना चाहते हैं तो आपको यह चैक लेना होगा, अन्यथा मेरे पास आपकी धनराशि वापस करने का अन्य कोई स्रोत नहीं है और तब अपीलार्थी ने वादी-प्रत्यर्थी ने प्रश्नगत चैक स्वीकार कर लिया । आवेदन के जवाब में यह भी कहा गया है कि वादी-प्रत्यर्थी द्वारा आवेदन में उल्लिखित दुकानें अपीलार्थी-प्रतिवादी ने अन्य व्यक्तियों को रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेखों द्वारा विक्रीत कर दी हैं । यह भी कहा गया है कि उसने चैक पक्षकारों के बीच कारबार संव्यवहारों के संबंध में प्राप्त किया था और यह अनुरोध किया वादी द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज किया जाए ।

4. अपीलार्थी के काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने मामले के इस पहलू पर विचार न करके गलती की है कि प्रश्नगत चैक की धनराशि उनके कारबार संव्यवहारों से संबंधित है और इसलिए वादी न्यायालय में ईमानदारी के साथ नहीं आया है और उसने मामले के सही तथ्यों का भी उल्लेख नहीं किया है और इसलिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 25 अप्रैल, 2017 को पारित आदेश में मामले के इस पहलू की उपेक्षा की है और इसलिए यह आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है । अपीलार्थी के काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि प्रश्नगत दुकानें अपीलार्थी की हैं और उसे अपनी संपत्ति को विक्रीत करने का पूर्ण अधिकार है और उसने रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा दुकानें विक्रीत कर दी हैं इसलिए उसकी संपत्ति कुर्क किए जाने योग्य नहीं है । काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अपीलार्थी विवादित चैक की धनराशि का प्रत्यर्थी को वापस संदाय करने के लिए जिम्मेदार है और यह तथ्य का प्रश्न है जिसे विचारण न्यायालय साक्ष्य लेने के पश्चात् और वाद में अंतिम विनिश्चय के समय विनिश्चित कर सकता है । इस प्रक्रम पर अपीलार्थी द्वारा आदेश 38, नियम 5 के अधीन फाइल किया गया आवेदन खारिज किए जाने योग्य है । काउंसेल ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए पुनः अनुरोध किया है ।

5. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय ने निर्णय के पैरा 5 में अपीलार्थी की सद्‌भावना उपदर्शित करते हुए यह संप्रेक्षण किया है कि अपीलार्थी ने आवेदन में उल्लिखित संपत्तियां प्रत्यर्थी द्वारा आदेश 38, नियम 5 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को विफल करने के लिए समन की तामील के पश्चात् विक्रीत की हैं । काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अपीलार्थी के साथ कोई अन्याय नहीं हुआ है क्योंकि विचारण न्यायालय ने आदेश 38, नियम 5 के अधीन उपबंधों के अनुसार केवल 5 लाख 50 हजार रुपए की समुचित प्रतिभूति प्रस्तुत करने का आदेश किया है और अंततः काउंसेल ने अपील की खारिजी के लिए अनुरोध किया ।

6. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **राजेन्द्रन और अन्य** बनाम **शंकर सुंदरम और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय के 12 और 13 का अवलंब लिया है, जिनमें इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "12. वादी द्वारा निर्णय से पूर्व कुर्की के लिए आवेदन फाइल किया गया था जिससे वाद डिक्री होने की दशा में उसका हित सुरक्षित रहे । न्यायालय ऐसी किसी स्थिति में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 38, नियम 5 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करता है । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने हमारे समक्ष के अपीलार्थियों को केवल यह निदेश दिया है कि वे आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर प्रतिभूति दाखिल करें । यह निदेश दिया गया था कि इससे विफल रहने पर आवेदन की अनुसूची में उल्लिखित दूसरी मद की कुर्की जारी की जाएगी ।
>
> 13. हमारे मतानुसार इससे अपीलार्थियों के साथ गंभीर अन्याय नहीं हुआ है । न्यायालय से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 38, नियम 5 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते समय यह अपेक्षित है कि वह इस प्रक्रम पर अपनी प्रथमदृष्ट्या राय गठित करे । पक्षकारों द्वारा दी गई सभी दलीलों की विधिमान्यता या अविधिमान्यता के बारे में विचार किए जाने की आवश्यकता नहीं है । फर्म के नाम में

---

[1] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1170.

एक चैक जारी किया गया था । अपीलार्थी इस फर्म के भागीदार हैं । फर्म के एक भागीदार द्वारा एक प्रोनोट निष्पादित किया गया था । अतः भागीदारी अधिनियम के अधीन भी वादी प्रथमदृष्ट्या न केवल फर्म के विरुद्ध अपितु अपने भागीदारों के विरुद्ध दावा संस्थित कर सकता है ।"

7. पक्षकारों के काउंसेलों को सुना गया ।

8. विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का परिशीलन करने के पश्चात् मेरा यह सुविचारित मत है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में इस कारण से कोई अवैधता नहीं है कि प्रथमतः विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी-प्रतिवादी की सद्भावनाओं पर विचार किया है जैसा कि आदेश के पैरा 5 में उल्लिखित है, जिससे यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी ने आवेदन में उल्लिखित संपत्तियां वाद में समनों की तामील के तुरन्त पश्चात् विक्रीत की थीं ; द्वितीयतः यदि अपीलार्थी 5 लाख 50 हजार रुपए की समुचित प्रतिभूति प्रस्तुत करता है तो अपीलार्थी के साथ कोई अन्याय नहीं होगा जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा निदेश किया गया है ; तृतीयतः विचारण न्यायालय ने आदेश पारित करते समय प्रथमदृष्ट्या वादी के हक में राय गठित की है ।

9. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित उक्त निर्णय को दृष्टिगत करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत एक संभव मत है ।

10. मामले को इस दृष्टि से देखते हुए अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील तथा रोक के लिए फाइल किया गया आवेदन खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

मोहन लाल

बनाम

रमेश चन्द

तारीख 25 नवंबर, 2017

न्यायमूर्ति चन्द्र भूषण बारोवालिया

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 38 और 39 – स्थायी व्यादेश के लिए वाद – संयुक्त संपत्ति में सह-स्वामियों/सह-भागीदारों का एक रास्ता (ड्योढ़ी) होना – एक भागीदार द्वारा सन्निर्माण करके रास्ता अवरुद्ध किया जाना – सह-स्वामी/सह-भागीदार किसी रीति में सन्निर्माण करके अन्य स्वामियों/भागीदारों का रास्ता अवरुद्ध नहीं कर सकता – स्थायी व्यादेश मंजूर किया जाना उचित है ।

वर्तमान द्वितीय अपील अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई है, जो विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी था । इस अपील द्वारा अपीलार्थी ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला द्वारा सिविल अपील सं. 30-जी./13/2005 में 31 जुलाई 2005 को पारित निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया है, जिसके द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) न्यायालय सं. 2, देहरा ज़िला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश द्वारा 2000 के सिविल वाद सं. 137 में तारीख 31 जनवरी, 2005 को पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् विचारण न्यायालय ने डयोढ़ी को मकान के भाग के रूप में माना है जबकि तथ्यतः डयोढ़ी एक रास्ता है जिसके बारे में विद्वान् विचारण न्यायालय समझने में विफल रहा है और इसलिए इस आशय के लिए अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित है । वादी ने यह प्रकथन किया है कि स्थल रेखांकन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए में ए. बी. सी. डी. ई. एफ. जी. एच. शब्दों द्वारा उपदर्शित भूमि रिक्त भूमि है जिस पर पूर्व में एक डयोढ़ी अर्थात् मकानों या आबादी के लिए प्रवेश स्थान था जो वाद भूमि में स्थित है और अब डयोढ़ी गिराई जा चुकी है और अब इस स्थान से उसके मकान को रास्ता गुजरता है । उसने यह भी प्रकथन किया है कि प्रतिवादी ने इसके ऊपर सन्निर्माण करना आरंभ कर दिया है और यदि उसने सन्निर्माण जारी रखा तो इससे उसका रास्ता बंद हो जाएगा । जबकि प्रतिवादी ने अपने

शपथपत्र प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए में और डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपस्थित होकर यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वादी का स्थल रेखांकन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए में ए. बी. सी. डी. ई. एफ. जी. एच. शब्दों द्वारा उपदर्शित भूमि से कोई वास्ता या सरोकार नहीं है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उक्त भूमि के ऊपर उसके पिता बाबू राम का पुराना मकान था जो कि गिर गया है और खाली भूमि के दोनों ओर मकान मौजूद हैं । शजरा-नसब की प्रति में की गई प्रविष्टियों को दृष्टिगत करते हुए यह साबित हो गया है कि कृपा के तीन पुत्र अर्थात् बाबू राम, जगत और गंगा राम थे जबकि ज्ञान देव के दो पुत्र अर्थात् रमेश चन्द और सुरेश थे । प्रतिवादी मोहन लाल ने यह स्वीकार किया है कि विश्वनाथ, पी. डब्ल्यू. 6 का पिता प्रियावर्त उसके पिता बाबू राम के भाई थे और विश्वनाथ को पी. डब्ल्यू. 6 प्रियावर्त की संपत्ति विरासत में मिली थी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि वाद भूमि बाबू राम और ज्योति राम को उनके पिता कृपा राम से विरासत में मिली थी, जिससे यह साबित होता है कि वाद भूमि के स्वामी बाबू राम और जगत राम थे । बाबू राम की विरासत उसके दो पुत्रों को मिली और जगत राम को विश्वनाथ की विरासत मिली । अभिलेख पर के साक्ष्य से यह पूर्णतया साबित हो गया है कि वाद भूमि वाद के पक्षकारों की परस्पर संयुक्त संपत्ति है और इसमें अन्य भागीदार अर्थात् प्रतिवादी विश्वनाथ के भाई हैं । प्रतिवादी इस बारे में सबूत या कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका कि वाद भूमि का पक्षकारों के बीच विभाजन हो गया है । अभिलेख पर के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि वादी ने विश्वनाथ से आबादी देह का भाग क्रय किया था और वह प्रतिवादी और अन्यों के सह भागीदारों के साथ वाद भूमि का संयुक्त स्वामी बन गया था । तथापि, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि वादी ने रास्ते का दावा किया है और चूंकि वहां वैकल्पिक रास्ता है इसलिए वह इसका दावा नहीं कर सकता । तथापि, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि वादी ने आवश्यकता के सुखाधिकार के रूप में रास्ते का दावा नहीं किया था अपितु उसने चिरभोग के अधिकार पर यह दावा किया था । यह साबित हो गया है कि रिक्त भूमि जिसे ए. बी. सी. डी. ई. एफ. जी. एच. अक्षरों द्वारा उपदर्शित किया गया है, पक्षकारों की संयुक्त संपत्ति है और वे उस पर संयुक्त रूप से काबिज हैं तथा डयोढ़ी जो मुख्य प्रवेश रास्ता है, सभी सह भागीदारों के मकानों तक जाता है और इसलिए कोई सह भागीदार किसी भी रीति में अन्य सह भागीदार के प्रश्नगत रास्ते को बंद करने के लिए वाद भूमि के ऊपर किसी प्रकार का सन्निर्माण नहीं कर सकता ।

तद्नुसार विधि के सारभूत प्रश्न सं. 1 का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया जाता है कि विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने कोई गलती नहीं की है और न्यायालय ने दस्तावेजों सहित अभिलेख पर के साक्ष्य का समुचित रूप से मूल्यांकन किया है क्योंकि अभिलेख पर यह बात पूर्ण रूप से साबित हो गई है कि प्रतिवादी ने डयोढ़ी पर सन्निर्माण करने का प्रयास किया है । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट और अन्य साक्ष्य का जैसा कि यह सही परिप्रेक्ष्य में अभिलेख पर पेश किया गया है, सही रूप से मूल्यांकन किया है । विधि के सारभूत प्रश्न सं. 2 का यह अभिनिर्धारित करते हुए उत्तर दिया जाता है कि वादी ने वाद संपत्ति के सही पूर्ण विवरण के साथ फाइल किया था और उसने अभिलेख पर अपना पक्षकथन भी साबित कर दिया है और इसलिए विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष तथ्यों के जो अभिलेख पर आए हैं, मूल्यांकन के पश्चात् निकाले गए हैं और इसलिए अपील न्यायालय ने विधि को सही रूप से लागू किया है । उपर्युक्त चर्चा का परिणाम यह है कि वर्तमान अपील में कोई बल नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है और तद्नुसार खारिज की जाती है । तथापि, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए पक्षकार अपना-अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे । (पैरा 17, 18, 20 और 21)

अनुसरित निर्णय

पैरा

[2010]	2010 की नियमित द्वितीय अपील सं. 575, तारीख 18 जुलाई, 2016 को विनिश्चित : **कृष्ण और एक अन्य** बनाम **अमृत लाल** ।	19

सिविल (अपीली) अधिकारिता : 2007 की नियमित द्वितीय अपील सं. 470.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आर. के. शर्मा और सुश्री अनिता परमार

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अजय शर्मा

न्यायमूर्ति चन्द्रभूषण बारोवालिया – वर्तमान द्वितीय अपील अपीलार्थी (जिसे आगे प्रतिवादी कहा गया है) द्वारा फाइल की गई है, जो विद्वान्

विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी था । इस अपील द्वारा अपीलार्थी ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला द्वारा सिविल अपील सं. 30-जी./13/2005 में 31 जुलाई 2005 को पारित निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया है, जिसके द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) न्यायालय सं. 2, देहरा जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश द्वारा 2000 के सिविल वाद सं. 137 में तारीख 31 जनवरी, 2005 को पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया गया है ।

2. संक्षेप में तथ्य जो वर्तमान अपील के निर्धारण और न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक हैं, इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी जो विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष वादी था (जिसे आगे "वादी" कहा गया है) ने स्थायी और निषेधात्मक व्यादेश के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 38 और 39 के अधीन प्रतिवादी के विरुद्ध एक वाद संस्थित किया था । उसने यह अनुरोध किया था कि प्रतिवादी को रेखांकन जिसे ए. बी. सी. डी. जी. एच. के रूप में चिह्नांकित किया गया है, भूमि पर नींव खोदने, सन्निर्माण करने और भूमि की प्रकृति को परिवर्तित करने और रास्ता जिसे रेखांकन में गुलाबी रंग से उपदर्शित किया गया है, अवरुद्ध करने से रोका जाए । उक्त भूमि का खाता सं. 158 मिनजुमला, खतौनी सं. 164 मिनजुमला, खसरा सं. 384 जिसका माप 0.07-29 हैक्टेयर है, जिसे वर्ष 1997-98 की जमाबंदी की प्रति में उपवर्णित किया गया है और जो मुहाल और मौजा कोसान तहसील देहरा जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश (जिसे आगे "वाद भूमि" कहा गया है) में स्थित है । वादी ने आज्ञापक व्यादेश के लिए डिक्री का भी दावा किया है जिसमें प्रतिवादी को यह निदेश देने का अनुरोध किया गया है कि प्रतिवादी ढांचे को गिराकर भूमि को उसकी वास्तविक स्थिति में पुनःस्थापित करे, यदि प्रतिवादी भूमि के उक्त भाग के ऊपर निर्माण करवाने में सफल हो जाता है ।

3. प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करके वादी के वादपत्र का विरोध किया और वाद की ग्राह्यता तथा विबंधन के संबंध में प्राथमिक आक्षेप उठाए । गुण-दोष के आधार पर प्रतिवादी ने यह स्वीकार किया कि वाद भूमि देह की आबादी में है तथापि, उसने वादपत्र में किए गए शेष प्रकथनों को गलत बताया । प्रतिवादी के अनुसार वादी वाद भूमि में सहभागीदार नहीं है और न ही वाद भूमि में कोई रास्ता निकलता है । उसने यह कथन किया कि वाद भूमि के ऊपर उसका मकान स्थित है और इसलिए उसे इस भूमि पर सभी प्रकार का निर्माण करने का अधिकार है ।

उसने यह भी कथन किया कि वाद भूमि में उसके मकान की नींव वादी की ओर से कोई आक्षेप किए बिना वर्तमान वाद के फाइल करने से पूर्व ही डाल दी गई थी । प्रतिवादी के अनुसार वाद भूमि आबादी भूमि है जो प्रतिवादी की पुरानी आबादी है और उसके द्वारा इस पर नई नींव डाली गई है । अंततः प्रतिवादी ने वाद को खारिज करने का अनुरोध किया ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद के अवधारण और न्यायनिर्णयन के लिए तारीख 20 दिसंबर, 2001 को निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

"1. क्या वादी यथा अनुरोध किए गए स्थायी व्यादेश के लिए हकदार है ? ओ. पी. पी.

2. क्या वादी यथा अनुरोध किए गए आज्ञापक व्यादेश के लिए हकदार है ? ओ. पी. पी.

3. क्या वादी को वर्तमान वाद फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है ? ओ. पी. डी.

4. क्या वादी अपने कार्य और आचरण द्वारा वर्तमान वाद फाइल करने से विबद्ध है ? ओ. पी. डी.

5. क्या वाद बेहतर विशिष्टियों के लिए न्यायसंगत नहीं है ? ओ. पी. डी.

6. अनुतोष ।"

5. विवाद्यक सं. 1 से 5 को नकारात्मक रूप में विनिश्चित करने के पश्चात् वादी का वाद खारिज कर दिया गया था । इसके पश्चात् वादी ने विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जो मंजूर की गई थी । अतः वर्तमान नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई जो विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों पर सुनवाई के लिए स्वीकार की गई :–

> "1. क्या विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने साक्ष्य और स्थानीय आयुक्त पी. डब्ल्यू. 2 की रिपोर्ट की पूर्णतया उपेक्षा करने में गंभीर गलती नहीं की है ?
>
> 2. क्या वादी का वाद खारिज किए जाने योग्य नहीं था क्योंकि संपत्ति का अपूर्ण विवरण दिया गया था ?"

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह

दलील दी कि विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अनुचित है और उन तथ्यों के मूल्यांकन के बिना पारित की गई है जो अभिलेख पर आए हैं और इसलिए यह अपास्त किए जाने योग्य है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री विधि के अनुसार है और उसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

7. मैंने पक्षकारों की दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए अभिलेख का सतर्कतापूर्वक परिशीलन किया ।

8. वादी अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए साक्षी कठघरे में पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में पेश हुआ है और उसने अभिलेख पर जमाबंदी प्रदर्श पी. 1 पेश की है जिससे यह उपदर्शित होता है कि वाद भूमि आबादी देह के रूप में अभिलिखित है । उसने वंशावली तालिका दर्शित करने के लिए वर्ष 1997-98 के लिए शजरा-नसब की प्रति भी अभिलेख पर पेश की है । इसके अतिरिक्त वादी ने क्षेत्र ए. बी. सी. डी. ई. एफ. जी. एच. जिसके बारे में वर्तमान वाद फाइल किया गया है, उपदर्शित करने वाला रेखांकन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए अभिलेख पर पेश किया है । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पक्षकारों के आबादी देह भूमि में जो संयुक्त है, अपने-अपने आवासीय मकान हैं । वादी के अनुसार डयोढ़ी जो रेखांकन में उपदर्शित की गई है, एक रास्ता है और इस रास्ते के बारे में पक्षकारों के पूर्वजों के बीच एक समझौता हुआ था । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि इस रास्ते के अतिरिक्त उनके मकानों में जाने के लिए अन्य कोई रास्ता नहीं है और यदि प्रतिवादी इस रास्ते के ऊपर अपना मकान निर्मित करने में सफल हो जाता है तो उनके मकानों का रास्ता बंद हो जाएगा । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि उन्हें आबादी "लाल लकीर" बाबू राम की विरासत में मिली है । तथापि, वह अपने पिता ज्ञानचंद से विरासत में मिली भूमि के संबंध में कोई दस्तावेज पेश नहीं कर सकता । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने वाद भूमि और आबादी भूमि लगभग 6-7 वर्ष पूर्व विश्वनाथ से क्रय की थी । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि बाबू राम के वारिसों को बाबू राम की संपत्ति विरासत में मिली है तथापि, वह उनकी विरासत के संबंध में कोई दस्तावेज पेश नहीं कर सकता ।

9. श्री ललित उप्पल अधिवक्ता (वाद भूमि के निरीक्षण के लिए न्यायालय द्वारा नियुक्त) साक्षी कठघरे में पी. डब्ल्यू. 2 के रूप में पेश हुए

हैं और उन्होंने अभिलेख पर निरीक्षण रिपोर्ट पी. डब्ल्यू. 2/ए और पक्षकारों तथा साक्षियों के कथन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/बी, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/सी और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/डी साबित किए हैं । निरीक्षण रिपोर्ट पी. डब्ल्यू. 2/ए के अनुसार स्थल पर चार कक्ष और पत्थरों की दो कतारों तक नींव सन्निर्मित पाई गई थी । उन्होंने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि नींव पर कोई रास्ता नहीं पाया गया था ।

10. श्री कृष्ण कुमार ने साक्षी कठघरे में पी. डब्ल्यू. 8 के रूप में उपस्थित होकर यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने स्थल रेखांकन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए तैयार किया है । तथापि, उसने नक्शे पर रास्ते की लंबाई उपदर्शित नहीं की है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि रेखांकन में उपदर्शित खाली भूमि पर प्रतिवादी की नींवें पड़ी हैं तथापि, उसने इस बात से इनकार किया कि प्रतिवादी के पक्षकथन को प्रतिकूल बनाने के लिए उसने जानबूझकर रेखांकन में नींवें उपदर्शित नहीं की हैं ।

11. पी. डब्ल्यू. 3 श्री गुरदास राम ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 18, नियम 4 के अधीन सबूत शपथपत्र फाइल करके वादी के पक्षकथन का समर्थन किया है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि वादी को भूमि उसके पिता से विरासत में नहीं मिली है तथापि, उसने यह भूमि लगभग 6-7 वर्ष पूर्व विश्वनाथ से क्रय की है । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वादी के मकान का आधा भाग आबादी भूमि में आता है और शेष आधा भाग विश्वनाथ से क्रय की गई भूमि के अन्तर्गत आता है । इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि वादी की भूमि के बराबर "गोहर" है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि बाबू राम की आबादी भूमि पर प्रतिवादी मोहन लाल काबिज है और उसके आंगन के दोनों ओर मकान हैं । उसने यह भी स्वीकार किया है कि क्षेत्र के अन्य निवासी "गोहर" से गुजरते हैं और तत्पश्चात् वादी के मकान पर जाते हैं ।

12. पी. डब्ल्यू. 4 ज्योति प्रकाश (प्रतिवादी का भाई) ने भी वादी के पक्षकथन का समर्थन किया है और उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि वाद भूमि के रास्ते के ऊपर उसका कोई भाग (अंश) नहीं है । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि ज्ञान देव (वादी के पिता) को उसके कुटुंब के स्वामित्व वाली कोई भूमि विरासत में नहीं मिली है और सुरेश को भी कुछ भी विरासत में नहीं मिला है । उसने और उसके भाई ने आबादी और ज्ञान देव की अन्य भूमि क्रय की थी । उसने यह भी स्वीकार किया है

कि जहां प्रतिवादी ने नींवें डाली हैं वहां बाबू राम का पुराना मकान और “डयोढ़ी” है ।

13. पी. डब्ल्यू. 5 ओम प्रकाश (प्रतिवादी का दूसरा भाई) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि उसकी प्रतिवादी के साथ सिविल मुकदमेदारी चल रही है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसके पिता ने देहरा में आबादी बदल ली थी । पी. डब्ल्यू. 6 प्रियावर्त ने अपनी प्रतिपरीक्षा में वादी के अभिसाक्ष्य के प्रतिकूल अभिसाक्ष्य देते हुए इस बात से इनकार किया है कि ज्ञान देव को बाबू राम से कोई भूमि विरासत में मिली थी तथा सुरेश को भी उनके पिता से कुछ भी विरासत में मिला था । पी. डब्ल्यू. 7 अमरनाथ ने अपनी प्रतिपरीक्षा में भूमि के ऊपर प्रतिवादी मोहन लाल जिस पर उसने नींवें खोदी थीं, के अधिकार को स्वीकार किया है ।

14. इसके प्रतिकूल प्रतिवादी मोहन लाल डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में साक्षी के कठघरे में पेश हुआ है और उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि “लाल लकीर” बाबू राम और जगतराम को कृपा राम से विरासत में मिली है किंतु ज्ञान देव को बाबू राम से कोई संपत्ति विरासत में नहीं मिली है । उसने इस बात से इनकार किया है कि “लाल लकीर” विश्वनाथ को जगत राम से विरासत में मिली थी तथापि, उसने यह कहा है कि जगत राम का पुत्र विश्वनाथ भी खसरा सं. 384 अर्थात् वाद भूमि का स्वामी था । उसने इस बात से भी इनकार किया है कि वादी और उसके भाई ने “लाल लकीर” के रूप में अभिलिखित वाद भूमि सहित विश्वनाथ के सम्पूर्ण भाग को क्रय कर लिया था । उसने इस बात से इनकार किया है कि वादी के मकान पर जाने के लिए कोई वैकल्पिक रास्ता नहीं है तथापि, उसने यह कहा है कि वहां एक भिन्न रास्ता है । उसने इस बात से भी इनकार किया है कि उसने मई, 2000 में उस भूमि के ऊपर नींवें खोदी थीं जहां से एक रास्ता वादी के मकान को जाता है ।

15. डी. डब्ल्यू. 2 प्रेम सागर ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि वाद भूमि दोनों पक्षकारों की पैतृक संपत्ति है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि जब कोई व्यक्ति “डयोढ़ी” से आगे जाता है तब वह भूमि जहां प्रतिवादी ने नींवें खोदी थीं, आती है और इसके पश्चात् प्रतिवादी का आंगन है और उसके पश्चात् वादी का मकान है तथापि, उसने यह कहा है कि वादी ने अपने मकान पर जाने के लिए एक पृथक् रास्ता

खरीदा था । उसने इस बात से इनकार किया है कि यदि प्रतिवादी वाद भूमि के ऊपर मकान बनाता है तो वादी के मकान का रास्ता बंद हो जाएगा ।

16. डी. डब्ल्यू. 3 पृथी चन्द ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि नींवें खोदते समय किसी व्यक्ति ने कोई आक्षेप नहीं किया था और उस समय वाद भूमि से कोई रास्ता नहीं निकलता था । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि वादी और प्रतिवादी दोनों ही अपने-अपने मकानों को जाने के लिए "डयोढ़ी" से गुजरते थे । उसने यह भी स्वीकार किया है कि यदि विवादित रास्ते पर मकान बनाया जाता है तो वादी के मकान का रास्ता बंद हो जाएगा ।

17. विद्वान् विचारण न्यायालय ने डयोढ़ी को मकान के भाग के रूप में माना है जबकि तथ्यतः डयोढ़ी एक रास्ता है जिसके बारे में विद्वान् विचारण न्यायालय समझने में विफल रहा है और इसलिए इस आशय के लिए अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित है । वादी ने यह प्रकथन किया है कि स्थल रेखांकन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए में ए. बी. सी. डी. ई. एफ. जी. एच. शब्दों द्वारा उपदर्शित भूमि रिक्त भूमि है जिस पर पूर्व में एक डयोढ़ी अर्थात् मकानों या आबादी के लिए प्रवेश स्थान था जो वाद भूमि में स्थित है और अब डयोढ़ी गिराई जा चुकी है और अब इस स्थान से उसके मकान का रास्ता गुजरता है । उसने यह भी प्रकथन किया है कि प्रतिवादी ने इसके ऊपर सन्निर्माण करना आरंभ कर दिया है और यदि उसने सन्निर्माण जारी रखा तो इससे उसका रास्ता बंद हो जाएगा । जबकि प्रतिवादी ने अपने शपथपत्र प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए में और डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपस्थित होकर यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वादी का स्थल रेखांकन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 8/ए में ए. बी. सी. डी. ई. एफ. जी. एच. शब्दों द्वारा उपदर्शित भूमि से कोई वास्ता या सरोकार नहीं है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उक्त भूमि के ऊपर उसके पिता बाबू राम का पुराना मकान था जो कि गिर गया है और खाली भूमि के दोनों ओर मकान मौजूद हैं ।

18. शजरा-नसब की प्रति में की गई प्रविष्टियों को दृष्टिगत करते हुए यह साबित हो गया है कि कृपा के तीन पुत्र अर्थात् बाबू राम, जगता और गंगा राम थे जबकि ज्ञान देव के दो पुत्र अर्थात् रमेश चन्द और सुरेश थे । प्रतिवादी मोहन लाल ने यह स्वीकार किया है कि विश्वनाथ, पी. डब्ल्यू. 6 का पिता प्रियावर्त उसके पिता बाबू राम के भाई थे और विश्वनाथ को पी. डब्ल्यू. 6 प्रियावर्त की संपत्ति विरासत में मिली थी ।

उसने यह भी स्वीकार किया है कि वाद भूमि बाबू राम और ज्योति राम को उनके पिता कृपा राम से विरासत में मिली थी, जिससे यह साबित होता है कि वाद भूमि के स्वामी बाबू राम और जगत राम थे । बाबू राम की विरासत उसके दो पुत्रों को मिली और जगत राम को विश्वनाथ की विरासत मिली । अभिलेख पर के साक्ष्य से यह पूर्णतया साबित हो गया है कि वाद भूमि वाद के पक्षकारों की परस्पर संयुक्त संपत्ति है और इसमें अन्य भागीदार अर्थात् प्रतिवादी विश्वनाथ के भाई हैं । प्रतिवादी इस बारे में सबूत या कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका कि वाद भूमि का पक्षकारों के बीच विभाजन हो गया है ।

19. इस न्यायालय ने **केवल कृष्ण और एक अन्य** बनाम **अमृत लाल**[1] वाले मामले में सह भागीदारों के अधिकारों के बारे में अधिकथित किया है, जो इस प्रकार है :–

"क. कोई सह-स्वामी/सह-भागीदार संपूर्ण संपत्ति में अर्थात् संपत्ति के प्रत्येक इंच में हित/अधिकार रखता है ।

ख. विधि की दृष्टि में किसी एक सह-स्वामी/सह-भागीदार का संयुक्त संपत्ति में कब्जा सभी का कब्जा माना जाता है सिवाय उस व्यक्ति के जो वस्तुतः काबिज नहीं है ।

ग. किसी एक सह-भागीदार/सह-स्वामी का संपत्ति के वृहत्तर भाग का या संयुक्त संपत्ति के संपूर्ण भाग का अधिभोग मात्र अन्यों को हकदारी से बाहर नहीं करता क्योंकि किसी एक व्यक्ति का कब्जा सभी की ओर से कब्जा माना जाता है । यह बात इस एक अपवाद के अध्यधीन है कि जहां किसी सह-स्वामी/सह-भागीदार को दूसरे के द्वारा पूर्ण रूप से या अभिनिश्चायक रूप से निष्कासित कर दिया गया हो तथापि, सभी की ओर से संयुक्त कब्जे की अवधारणा को नकारने के लिए ऐसे बहिष्कार के आधार पर सह-स्वामी/सह-भागीदार का कब्जा न केवल अनन्य होना चाहिए अपितु दूसरे की इस बारे में जानकारी भी नहीं होनी चाहिए अर्थात् जहां कोई सह स्वामी स्पष्ट रूप से अपनी हकदारी का प्रकथन और दूसरे की हकदारी से इनकार करता है ।

घ. समय पर्यवसान सह-स्वामी/सह-भागीदार जिसका संयुक्त संपत्ति पर कब्जा नहीं है, के अधिकार को पर्यवसित नहीं करता,

---

[1] 2010 की नियमित द्वितीय अपील सं. 575, तारीख 18 जुलाई, 2016 को विनिश्चित.

अधिकार को छोड़ देने के सिवाय ।

ङ. प्रत्येक सह-स्वामी/सह-भागीदार को पति के हैसियत में उस रीति में संयुक्त संपत्ति करने का अधिकार है जो अन्य सह-स्वामी/ सह-भागीदार के समान अधिकारों से असंगत न हो ।

च. जहां कोई सह-स्वामी/सह-भागीदार अन्य सह स्वामी/सह-भागीदार के किसी इंतजाम/सम्मति के अधीन पृथक् भाग पर काबिज है वहां कोई सह-स्वामी/सह-भागीदार इस बात के स्वतंत्र नहीं है कि वह विभाजन के सिवाय अन्यों की सम्मति के बिना ऐसे इंतजाम को भंग करे ।

छ. जहां कहीं हक का पृथक्करण है और पक्षकार संयुक्त भूमि के किसी भाग पर लंबे समय से काबिज है, वहां जहां तक संभव है, विभाजन उस रीति में किया जाना चाहिए जिसमें कि पक्षकार अधिभोगी हैं और जहां तक संभव हो उसे उसी भाग पर समायोजित किया जाना चाहिए ।

ज. सह-भागीदारों/सह-स्वामियों से यह प्रत्याशित है कि वे अन्यों के अधिकार का सम्मान करें भले ही वह भूमि के विनिर्दिष्ट भाग पर काबिज हों जिससे कि अन्यों के सुखाधिकार बाधित न हों ।

झ. सह-भागीदार/सह-स्वामियों से अपेक्षित है कि वे अपने बीच शांति बनाए रखने के लिए अन्यों की भावनाओं का सम्मान करें । यह बात न केवल वैधानिक है अपितु यह नैतिक जिम्मेदारी भी है जिसका अनुसरण सह-भागीदारों/सह-स्वामियों द्वारा किया जाना आवश्यक है और उन्हें पक्षकारों के अधिकारों का अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन करते समय एक अधिकार के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए । न्यायिक प्रशासन का उद्देश्य समाज में विशेषतया सह-भागीदारों/सह-स्वामियों के बीच शांति कायम करना है ।

ञ. बड़ा सह-भागीदार/सह-स्वामी इस बात के लिए कर्तव्यबद्ध है कि वह आगे आए और मध्यस्थ बनने के पश्चात् किन्हीं दो या अधिक सह-भागीदारों/सह-स्वामियों के बीच विवाद को सुलझाए । यह न केवल बड़े सह-भागीदार/सह-स्वामी होने के नाते उसका कर्तव्य है अपितु उसकी नैतिक जिम्मेदारी भी है कि वह अपने अनुभव और मानसिक योग्यता के आधार पर कतिपय समय निकाले और शांति

कायम करने के लिए सह-भागीदारों/सह-स्वामियों के बीच विवाद में मध्यस्थता करे । न्यायालय मामले में मध्यस्थता के लिए बड़े सह-भागीदार/सह-स्वामी से पूछकर और सहायता लेकर ऐसी प्रक्रिया का उपयोग कर सकते हैं जिससे कि सह-भागीदारों/सह-स्वामियों और अंततः समाज के बीच शांति कायम हो ।"

20. अभिलेख पर के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि वादी ने विश्वनाथ से आबादी देह का भाग क्रय किया था और वह प्रतिवादी और अन्यों के सह भागीदारों के साथ वाद भूमि का संयुक्त स्वामी बन गया था । तथापि विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि वादी ने रास्ते का दावा किया है और चूंकि वहां वैकल्पिक रास्ता है इसलिए वह इसका दावा नहीं कर सकता । तथापि, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि वादी ने आवश्यकता के सुखाधिकार के रूप में रास्ते का दावा नहीं किया था अपितु उसने चिरभोग के अधिकार पर यह दावा किया था । यह साबित हो गया है कि रिक्त भूमि जिसे ए. बी. सी. डी. ई. एफ. जी. एच. अक्षरों द्वारा उपदर्शित किया गया है, पक्षकारों की संयुक्त संपत्ति है और वे उस पर संयुक्त रूप से काबिज हैं तथा डयोढ़ी जो मुख्य प्रवेश रास्ता है, सभी सह भागीदारों के मकानों तक जाता है और इसलिए कोई सह-भागीदार किसी भी रीति में अन्य सह-भागीदार के प्रश्नगत रास्ते को बंद करने के लिए वाद भूमि के ऊपर किसी प्रकार का सन्निर्माण नहीं कर सकता । तद्नुसार विधि के सारभूत प्रश्न सं. 1 का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया जाता है कि विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने कोई गलती नहीं की है और न्यायालय ने दस्तावेजों सहित अभिलेख पर के साक्ष्य का समुचित रूप से मूल्यांकन किया है क्योंकि अभिलेख पर यह बात पूर्ण रूप से साबित हो गई है कि प्रतिवादी ने डयोढ़ी पर सन्निर्माण करने का प्रयास किया है । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट और अन्य साक्ष्य का जैसा कि यह सही परिप्रेक्ष्य में अभिलेख पर पेश किया गया है, सही रूप से मूल्यांकन किया है । विधि के सारभूत प्रश्न सं. 2 का यह अभिनिर्धारित करते हुए उत्तर दिया जाता है कि वादी ने वाद संपत्ति के सही पूर्ण विवरण के साथ फाइल किया था और उसने अभिलेख पर अपना पक्षकथन भी साबित कर दिया है और इसलिए विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष तथ्यों के जो अभिलेख पर आए हैं, मूल्यांकन के पश्चात् निकाले गए हैं और इसलिए अपील न्यायालय ने विधि को सही रूप से लागू किया है ।

21. उपर्युक्त चर्चा का परिणाम यह है कि वर्तमान अपील में कोई बल नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है और तद्नुसार खारिज की जाती है । तथापि, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए पक्षकार अपना-अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे ।

22. लंबित प्रकीर्ण आवेदनों का, यदि कोई हों, भी निपटान किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

संसद् के अधिनियम

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990

(1990 का अधिनियम संख्यांक 20)

[30 अगस्त, 1990]

राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन करने और उससे संसक्त या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के इक्तालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख* को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "आयोग" से धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय महिला आयोग अभिप्रेत है ;

(ख) "सदस्य" से आयोग का सदस्य अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत* सदस्य-सचिव भी है ;

(ग) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

---

* 31-1-1992, देखिए अधिसूचना सं. का. आ. 99(अ), दिनांक 31-1-1992, भारत का राजपत्र, भाग 2, अनुभाग 3(ii), पृ. 1.

अध्याय 2
राष्ट्रीय महिला आयोग

3. राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन – (1) केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय महिला आयोग के नाम से ज्ञात एक निकाय का गठन करेगी जो इस अधिनियम के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग और समनुदिष्ट कृत्यों का पालन करेगा ।

(2) यह आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनेगा –

(क) केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्देशित एक अध्यक्ष, जो महिलाओं के हित के लिए समर्पित हो ;

(ख) केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे योग्य, सत्यनिष्ठ और प्रतिनिष्ठित व्यक्तियों में से नामनिर्देशित पांच सदस्य जिन्हें विधि या विधान, व्यवसाय संघ आंदोलन, महिलाओं की नियोजन संभाव्यताओं की वृद्धि के लिए समर्पित उद्योग या संगठन के प्रबंध, स्वैच्छिक महिला संगठन (जिनके अंतर्गत महिला कार्यकर्ता भी हैं), प्रशासन, आर्थिक विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा या सामाजिक कल्याण का अनुभव है :

परंतु उनमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों में से प्रत्येक का कम से कम एक सदस्य होगा ;

(ग) केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट एक सदस्य-सचिव जो –

(i) प्रबंध, संगठनात्मक संरचना या सामाजिक आंदोलन के क्षेत्र में विशेषज्ञ है, या

(ii) ऐसा अधिकारी है जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा संघ के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है और जिसके पास समुचित अनुभव है ।

4. अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें – (1) अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य तीन वर्ष से अनधिक ऐसी अवधि के लिए पद धारण करेगा जो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ।

(2) अध्यक्ष या कोई सदस्य (ऐसे सदस्य-सचिव से भिन्न जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा संघ के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है) केन्द्रीय सरकार को संबोधित लेख द्वारा किसी भी समय, यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य का पद त्याग सकेगा ।

(3) केन्द्रीय सरकार, किसी व्यक्ति को, उपधारा (2) में निर्दिष्ट अध्यक्ष या सदस्य के पद से हटा देगी यदि वह व्यक्ति –

(क) अनुन्मोचित दिवालिया हो जाता है ;

(ख) ऐसे किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया और कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में नैतिक अधमता अंतर्ग्रस्त है ;

(ग) विकृत्तचित्त का हो जाता है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है ;

(घ) कार्य करने से इनकार करता है या कार्य करने में असमर्थ हो जाता है ;

(ङ) आयोग से अनुपस्थित रहने की इजाजत लिए बिना आयोग के लगातार तीन अधिवेशनों से अनुपस्थित रहता है ; या

(च) केन्द्रीय सरकार की राय में, उसने अध्यक्ष या सदस्य के पद का इस प्रकार दुरुपयोग किया है कि ऐसे व्यक्ति का पद पर बना रहना लोकहित के लिए अहितकर है :

परन्तु इस खंड के अधीन किसी व्यक्ति को तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति को इस विषय में सुनवाई का उचित अवसर नहीं दे दिया गया है ।

(4) उपधारा (2) के अधीन या अन्यथा होने वाली रिक्ति नए नामनिर्देशन द्वारा भरी जाएगी ।

(5) अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते, और उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

5. आयोग के अधिकारी और अन्य कर्मचारी – (1) केन्द्रीय सरकार आयोग के लिए ऐसे अधिकारियों और कर्मचारियों की व्यवस्था करेगी जो इस अधिनियम के अधीन आयोग के कृत्यों का दक्षतापूर्ण पालन करने के लिए आवश्यक हों ।

(2) आयोग के प्रयोजनों के लिए नियुक्त अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते और उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

6. वेतन और भत्तों का अनुदान में से संदाय किया जाना – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा प्रशासनिक व्यय, जिनके अंतर्गत धारा 5 में निर्दिष्ट अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन भी हैं, धारा 11 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदत्त किए जाएंगे ।

7. रिक्तियों आदि से आयोग की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना – आयोग का कोई भी कार्य या कार्यवाही आयोग में कोई रिक्ति विद्यमान होने या उसके गठन में त्रुटि होने के आधार पर ही प्रश्नगत या अविधिमान्य नहीं होगी ।

8. आयोग की समितियां – (1) आयोग ऐसी समितियां नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे विशेष प्रश्नों पर विचार करने के लिए आवश्यक हों जो आयोग द्वारा समय-समय पर उठाए जाएं ।

(2) आयोग को उपधारा (1) के अधीन नियुक्त किसी समिति के सदस्यों के रूप में, ऐसे व्यक्तियों में से जो आयोग के सदस्य नहीं हैं, उतने व्यक्ति सहयोजित करने की शक्ति होगी जितने वह उचित समझे और इस प्रकार सहयोजित व्यक्तियों को समिति के अधिवेशनों में उपस्थित रहने तथा उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होगा किन्तु उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होगा ।

(3) इस प्रकार सहयोजित व्यक्ति समिति के अधिवेशनों में उपस्थित होने के लिए ऐसे भत्ते प्राप्त करने के हकदार होंगे जो विहित किए जाएं ।

9. प्रक्रिया का आयोग द्वारा विनियमित किया जाना – (1) आयोग या उसकी समिति का अधिवेशन जब भी आवश्यक हो किया जाएगा और वह ऐसे समय और स्थान पर किया जाएगा जो अध्यक्ष ठीक समझे ।

(2) आयोग अपनी प्रक्रिया तथा अपनी समितियों की प्रक्रिया स्वयं विनियमित करेगा ।

(3) आयोग के सभी आदेश और विनिश्चय सदस्य-सचिव द्वारा या इस निमित्त सदस्य-सचिव द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत आयोग के किसी अन्य अधिकारी द्वारा अधिप्रमाणित किए जाएंगे ।

अध्याय 3
आयोग के कृत्य

10. आयोग के कृत्य – (1) आयोग निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का पालन करेगा, अर्थात् :–

(क) महिलाओं के लिए संविधान और अन्य विधियों के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण और परीक्षा करना ;

(ख) उन रक्षोपायों के कार्यकरण के बारे में प्रति वर्ष, और ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग ठीक समझे, केन्द्रीय सरकार को रिपोर्ट देना ;

(ग) ऐसी रिपोर्टों में महिलाओं की दशा सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा उन रक्षोपायों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिशें करना ;

(घ) संविधान और अन्य विधियों के महिलाओं को प्रभावित करने वाले विद्यमान उपबंधों का समय-समय पर पुनर्विलोकन करना और उनके संशोधनों की सिफारिश करना जिससे कि ऐसे विधानों में किसी कमी, अपर्याप्तता या त्रुटियों को दूर करने के लिए उपचारी विधायी उपायों का सुझाव दिया जा सके ;

(ङ) संविधान और अन्य विधियों के उपबंधों के महिलाओं से संबंधित अतिक्रमण के मामलों को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठाना ;

(च) निम्नलिखित से संबंधित विषयों पर शिकायतों की जांच करना और स्वप्रेरणा से ध्यान देना –

(i) महिलाओं के अधिकारों का वंचन ;

(ii) महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए और समता तथा विकास का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए भी अधिनियमित विधियों का अक्रियान्वयन ;

(iii) महिलाओं की कठिनाइयों को कम करने और उनका कल्याण सुनिश्चित करने तथा उनको अनुतोष उपलब्ध कराने

के प्रयोजनार्थ नीतिगत विनिश्चयों, मार्गदर्शक सिद्धांतों या अनुदेशों का अनुपालन,

और ऐसे विषयों से उद्भूत प्रश्नों को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठाना ;

(छ) महिलाओं के विरुद्ध विभेद और अत्याचारों से उद्भूत विनिर्दिष्ट समस्याओं या स्थितियों का विशेष अध्ययन या अन्वेषण कराना और बाधाओं का पता लगाना जिससे कि उनको दूर करने की कार्य योजनाओं की सिफारिश की जा सके ;

(ज) संवर्धन और शिक्षा संबंधी अनुसंधान करना जिससे कि महिलाओं का सभी क्षेत्रों में सम्यक् प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के उपायों का सुझाव दिया जा सके और उनकी उन्नति में अड़चन डालने के लिए उत्तरदायी कारणों का पता लगाना जैसे कि आवास और बुनियादी सेवाओं की प्राप्ति में कमी उबाऊपन और उपजीविकाजन्य स्वास्थ्य परिसंकटों को कम करने के लिए और महिलाओं की उत्पादकता की वृद्धि के लिए सहायक सेवाओं और प्रौद्योगिकी की अपर्याप्तता ;

(झ) महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना और उन पर सलाह देना ;

(ञ) संघ और किसी राज्य के अधीन महिलाओं के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना ;

(ट) किसी जेल, सुधार गृह, महिलाओं की संस्था या अभिरक्षा के अन्य स्थान का, जहां महिलाओं को बंदी के रूप में या अन्यथा रखा जाता है, निरीक्षण करना या करवाना, और उपचारी कार्रवाई के लिए, यदि आवश्यक हो, संबंधित प्राधिकारियों से बातचीत करना ;

(ठ) बहुसंख्यक महिलाओं को प्रभावित करने वाले प्रश्नों से संबंधित मुकदमों के लिए धन उपलब्ध कराना ;

(ड) महिलाओं से संबंधित किसी बात के, और विशिष्टतया उन विभिन्न कठिनाइयों के बारे में जिनके अधीन महिलाएं कार्य करती हैं, सरकार को समय-समय पर रिपोर्ट देना ;

(ढ) कोई अन्य विषय जिसे केन्द्रीय सरकार उसे निर्दिष्ट करे ।

(2) केन्द्रीय सरकार, उपधारा (1) के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट सभी

रिपोर्टों को संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी और उसके साथ संघ से संबंधित सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिशें अस्वीकृत की गईं हैं तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा ।

(3) जहां कोई ऐसी रिपोर्ट या उसका कोई भाग किसी ऐसे विषय से संबंधित है जिसका किसी राज्य सरकार से संबंध है वहां आयोग ऐसी रिपोर्ट या उसके भाग की एक प्रति उस राज्य सरकार को भेजेगा जो उसे राज्य के विधान-मंडल के समक्ष रखवाएगी और उसके साथ राज्य से संबंधित सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिशें अस्वीकृत की गईं हैं तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा ।

(4) आयोग को उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (च) के उपखंड (i) में निर्दिष्ट किसी विषय का अन्वेषण करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में वे सभी शक्तियां होंगी जो वाद का विचारण करने वाले सिविल न्यायालय की हैं, अर्थात् :–

(क) भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अपेक्षा करना ;

(ङ) साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ; और

(च) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए ।

अध्याय 4
वित्त, लेखे और लेखापरीक्षा

11. केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान – (1) केन्द्रीय सरकार, संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशि का संदाय करेगी जो केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए ठीक समझे ।

(2) आयोग इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए उतनी धनराशि खर्च कर सकेगा जितनी वह ठीक समझे और वह धनराशि उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय माना जाएगा ।

12. लेखे और संपरीक्षा – (1) आयोग, समुचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक ऐसे अंतरालों पर करेगा जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और उस संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और इस अधिनियम के अधीन आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को उस संपरीक्षा के संबंध में वही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में साधारणतया होते हैं और उसे विशिष्टतया बहियां, लेखा, संबंधित वाउचर और अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने और आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा यथाप्रमाणित आयोग का लेखा और साथ ही उस पर संपरीक्षा रिपोर्ट आयोग द्वारा केन्द्रीय सरकार को प्रति वर्ष भेजी जाएगी ।

13. वार्षिक रिपोर्ट – आयोग, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए अपनी वार्षिक रिपोर्ट, जिसमें पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष के दौरान उसके क्रियाकलापों का पूर्ण विवरण होगा, ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर, जो विहित किया जाए तैयार करेगा और उसकी एक प्रति केन्द्रीय सरकार को भेजेगा ।

14. वार्षिक रिपोर्ट और संपरीक्षा रिपोर्ट का संसद् के समक्ष रखा जाना – केन्द्रीय सरकार वार्षिक रिपोर्ट, रिपोर्ट की प्राप्ति के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी जिसके साथ उसमें अंतर्विष्ट सिफारिशों पर, जहां तक उनका संबंध केन्द्रीय सरकार से है, की गई कार्रवाई और यदि कोई ऐसी सिफारिशें अस्वीकृत की गई हैं तो अस्वीकृति के कारण का ज्ञापन और संपरीक्षा रिपोर्ट होगी ।

अध्याय 5

प्रकीर्ण

15. आयोग के अध्यक्ष, सदस्यों और कर्मचारिवृंद का लोक सेवक होना – आयोग का अध्यक्ष, उसके सदस्य, अधिकारी और अन्य कर्मचारी भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझे जाएंगे ।

16. केन्द्रीय सरकार आयोग से परामर्श करेगी – केन्द्रीय सरकार, महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी प्रमुख नीतिगत मामलों पर आयोग से परामर्श करेगी ।

17. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को क्रियान्वित करने के लिए नियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 4 की उपधारा (5) के अधीन अध्यक्ष और सदस्यों को और धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) धारा 8 की उपधारा (3) के अधीन सहयोजित व्यक्तियों द्वारा समिति के अधिवेशनों में उपस्थित होने के लिए भत्ते ;

(ग) धारा 10 की उपधारा (4) के खंड (च) के अधीन अन्य विषय ;

(घ) वह प्ररूप जिसमें लेखाओं का वार्षिक विवरण धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन रखा जाएगा ;

(ङ) वह प्ररूप जिसमें और वह समय जब वार्षिक रिपोर्ट धारा 13 के अधीन तैयार की जाएगी ;

(च) कोई अन्य विषय जिसे विहित किया जाना अपेक्षित है या किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	–	–	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	–	–	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	–	–	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	–	–	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	–	–	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	–	–	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	–	–	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	–	–	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	–	–	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	–	–	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	–	–	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	–	–	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	–	–	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	–	–	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	–	–	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	–	290	–
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	–	60	–

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 195/- उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105